

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय
 सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते
 नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥

ब्रह्म ने उनके समक्ष घास का एक तिनका रख दिया और कहाह्वह्वह्व“इसे फूँक मार कर उड़ा दो।” वायुदेव पूरी शक्ति लगा कर उस तिनके की ओर बढ़े, परन्तु उसे उड़ा न सके। वह वहाँ से तुरन्त लौट आये और देवों से कहाह्वह्वह्व“मैं यह निश्चित नहीं कर पाया कि यह यक्ष कौन है।”

जैसे पुष्प-माला के सभी पुष्पों में एक ही धागा अनुस्यूत है, वैसे ही सभी प्राणियों में एक ही आत्मा व्याप्त है। सभी में इस एक आत्मा का दर्शन कीजिए। विविधता का भाव त्याग दीजिए। सबसे प्रेम कीजिए। सबके प्रति सदय रहिए। सबकी सेवा कीजिए। आप ब्रह्म में प्रतिष्ठित होंगे। **स्वामी शिवानन्द**

ब्रह्मचर्य-शाधना :

स्त्रियाँ तथा ब्रह्मचर्य २

हृदय परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज हृदय

उच्छृंखल जीवन पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है। भारत की कुछ स्त्रियों ने इस मिथ्या स्वतन्त्रता का लाभ उठा कर अपना सर्वनाश कर लिया है। तथाकथित शिक्षित महिलाएँ आज जिस स्वतन्त्रता का उपभोग कर रही हैं, उसकी कोई सीमा नहीं है। इस स्वतन्त्रता ने अनेक घरों का सत्यानाश कर डाला है। इसने समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर दी है। इसने अनेक सम्मान्य परिवारों को लज्जित किया है। लड़कियों ने स्वतन्त्रता की अपनी अतोषणीय तृष्णा में पड़ कर सीमा का अतिक्रमण किया और अमूल्य सम्पत्ति खो डाली, जिसे अतीत काल की महिलाओं ने निष्कलंक बनाये रखा था।

पुरुषों के साथ मुक्त रूप से संसर्ग रखने से स्त्री अपनी गरिमा, शालीनता, नारी-सुलभ लालित्य तथा अपने शरीर और चरित्र की पवित्रता खो बैठती है। जो स्त्री पुरुषों के साथ मुक्त रूप से मिलती-जुलती है, वह अपने सतीत्व को अधिक समय तक बचाये नहीं रख सकती है। इसके कुछ अपवाद हो सकते हैं और रहे भी हैं। जो स्त्री लोक-जीवन में पुरुषों से मुक्त रूप से मिलती-जुलती है तथापि शुद्ध भी रहती है, वह निश्चय ही अतिमानवीय स्त्री होगी। अपने स्वभावगत काम-वासना वाली सामान्य स्त्री तो शीघ्र ही झुक जायेगी। मानव-प्रकृति अपनी पूर्ति करेगी।

यदि नारी का सतीत्व नष्ट हो गया, तो उसके जीवन में अवशेष क्या रहा? भले ही वह स्त्री समृद्ध हो तथा समाज के उच्च वर्ग के साथ उसका मेल-जोल

हो; पर यदि उसमें सतीत्व नहीं है, तो वह प्राणधारी शव मात्र है। स्वच्छन्द मिलने-जुलने का अनर्थकारी परिणाम होता है। जब जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण करने तथा एकान्त में कन्द-मूल खा कर जीवन-निर्वाह करने वाले ऋषि तथा योगी भी यदि सावधान नहीं रहते, तो प्रकृति की अशुभ शक्तियों द्वारा अधःपतित हो जाते हैं, तो उन स्त्रियों के विषय में क्या कहना जो नित्य ही स्वादिष्ट भोजन तथा मिष्टान्न खाती हैं, जो गोटे के अंचल वाले सुवासित मखमली तथा कौशेय वस्त्र धारण करती हैं, जिनमें अधिक मिलने-जुलने का व्यसन है, जो आत्म-संयम-मय जीवन-यापन नहीं करती हैं, जिनमें धार्मिक प्रशिक्षण तथा अनुशासन नहीं है तथा जिन्हें आभ्यन्तर जीवन तथा मोक्ष-धर्म का कोई बोध नहीं है। सुधी पाठक! मैं इस विषय को आपके स्वयं के चिन्तन, मनन, पर्यालोचन तथा समीक्षा के लिए आप पर छोड़ देता हूँ।

स्त्रियों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे उनकी तथा उनके परिवार की अपकीर्ति अथवा अपयश हो और उनके चरित्र पर कलंक लगे। चरित्रहीन पुरुष अथवा स्त्री जीवित ही मृतक-तुल्य समझे जाते हैं। समाज में व्यवहार करते समय उन्हें बहुत ही सावधान तथा सतर्क रहना चाहिए। उन्हें अत्यधिक बातें करने, मिलने-जुलने, ठहाका लगाने तथा मूर्खों की तरह हँसने से बचना चाहिए। उन्हें सदा गम्भीर गति से चलना चाहिए। कभी कूल्हे मटकाते हुए नहीं चलना चाहिए। उन्हें प्रेम के हाव-भाव से

पुरुषों की ओर नहीं देखना चाहिए। उनके वस्त्र बहुत चुस्त तथा अंग उद्घाटित करने वाले नहीं होने चाहिए। उन्हें बनाव-शृंगार त्याग देना चाहिए।

आध्यात्मिक जीवन के लिए आह्वान

हे देवियो! भूषाचार तथा काम-वासना में अपना जीवन नष्ट न करें। अपने नेत्र खोलें। धर्म-मार्ग पर चलें। अपने पतिव्रत-धर्म को बनाये रखें। अपने पतिदेव में भगवद्-दर्शन करें। गीता, उपनिषद्, भागवत तथा रामायण का स्वाध्याय करें। अच्छी गृहस्थधर्मिणियाँ तथा ब्रह्मचारिणियाँ बनें। अनेक गौरांगों को जन्म दें। संसार का भाग्य पूर्णतया आपके हाथ में है। संसार की सर्वकुंजी आपके पास है। स्वर्गिक आनन्द के द्वार को खोलें। अपने घर में वैकुण्ठ लायें। अपने बच्चों को अध्यात्म-पथ का प्रशिक्षण दें। जब वे अल्पवयस्क हों, तभी उनमें अध्यात्म का बीज वपन करें।

संसार की देवियो! क्या आप उच्चतर जीवन के लिए, भव्य, उदात्त तथा एकमात्र आत्ममय सच्चे जीवन के लिए प्रयास नहीं करेंगी? क्या इस भूतल पर जीवन की क्षुद्र भौतिक आवश्यकताओं से सन्तुष्ट हो जाना ही आपके लिए पर्याप्त है? क्या आपको स्मरण है कि मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से क्या कहा था? उसने अपने पति से कहा थाहृद्द“जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, सारी पृथ्वी के उस धन को ले कर मैं क्या करूँगी।” इस संसार की कितनी स्त्रियाँ इतनी निर्भीक हैं जो स्त्रियों के औपनिषदिक आदर्श के इस विवेकपूर्ण कथन को निश्चयपूर्वक कह सकें।

अपने को संसार के बन्धन में बाँधना संसार की माताओं तथा बहनों का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है। परिवार, बच्चों तथा सम्बन्धियों में उलझे रहना साहसी

तथा विवेकी स्त्रियों का आदर्श नहीं है। संसार की प्रत्येक माता को आध्यात्मिक जीवन के सच्चे प्रकाश तथा वैभव के प्रति अपने को, अपनी सन्तति को, अपने परिवार तथा अपने पतिदेव को प्रबुद्ध करने के अपने उत्तरदायित्व को अनुभव करना चाहिए। मदालसा क्या ही यशस्विनी माता थी! क्या उसने अपने बच्चों को स्नातकोत्तर परीक्षा तक अध्ययन करने और तदुपरान्त कोई काम ढूँढ़ने के लिए कहा था? ‘शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार-माया परिवर्जितोऽसिहृद्दतुम शुद्ध हो, तुम चैतन्य हो, तुम निष्कल्मष हो, तुम संसार की माया से मुक्त हो।’ ऐसी अद्वैत की शिक्षा मदालसा ने अपने बच्चों को पालने में झुलाते समय दी थी। वर्तमान जगत् की कितनी माताओं को अपने बच्चों को ऐसे गम्भीर ज्ञान की शिक्षा देने का सद्भाग्य प्राप्त है! इसके विपरीत वर्तमान काल की माताएँ तो यदि उनके बच्चों में आध्यात्मिक प्रवृत्ति सूक्ष्म रूप में भी पायी गयी, तो उसे कुचल देने का प्रयास करेंगी। यह क्या ही खेदपूर्ण तथा दयनीय अवस्था है! माताओ तथा बहनो! जाग जायें। अपनी प्रगाढ़ निद्रा से जाग जायें। अपने उत्तरदायित्व को समझें। अपने को आध्यात्मिक बनायें। अपने बच्चों को आध्यात्मिक बनायें। अपने पतिदेव को भी आध्यात्मिक बनायें; क्योंकि आप परिवार की निर्माता हैं। स्मरण रखें कि चुडाला ने किस प्रकार अपने पतिदेव को प्रबुद्ध किया था। आप राष्ट्र-निर्माता हैं। आप संसार की निर्माणकर्ता हैं। अतः अपना अध्यात्मीकरण करें। अपने में सुलभा, मैत्रेयी तथा गार्गी की भावना को अक्षुण्ण बनाये रखें। कायर न बनें। अपने मांसल घरों से, भ्रान्ति के घरों से, मिथ्याभिमान के घरों से बाहर आ जायें।

आप सब सच्ची संन्यासिनी बनें और सच्ची कीर्ति तथा महत्ता लायें, क्योंकि यही सच्ची निर्भीकता तथा साहस है, यही सच्चा ज्ञान तथा समझ है। यदि किसी महिला में आध्यात्मिक अग्नि नहीं है, यदि वह आत्ममय उच्चतर जीवन से अनभिज्ञ है, तो वह महिला महिला नहीं है। स्त्री का कर्तव्य परिवार तक ही सीमित नहीं है, उसका कर्तव्य परिवार से परे जाना

भी है। उसका कर्तव्य साड़ियों, चूड़ियों, जाकेट, पाउडर तथा इत्र में नहीं है और न उसका कर्तव्य अपने बच्चों को काम दिलाना ही है। उसके कर्तव्य का सम्बन्ध आत्मा से, ब्रह्म से भी है। ऐसी महिला भगवान् की सच्ची प्रतीक है। वह सम्मान्य है, वह पूज्य है।

(अनूदित)

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

स्वामी शिवानन्द

भगवान् के आह्वान का उत्तर

द्वह परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज द्वह

उस अनन्त, अचिन्त्य ब्रह्म सत्ता को हम प्रणाम करते हैं, उस सर्वातीत परमात्मा को श्रद्धापूर्वक नमन करते हैं, जो एक ही समय में दूरातिदूर भी है और साथ ही निकटतम से निकट भी है। मन की पहुँच से भी परे बहुत दूर और साथ ही आपके अपने-आपसे अधिक निकट भी; सब जगह विद्यमान, किन्तु इन चर्म-चक्षुओं द्वारा कहीं भी दिखायी न देने वाला; और फिर भी असंख्य विभिन्न नाम-रूपों में प्रकट होता हुआ, सब वस्तुओं के पीछे एकमात्र शक्ति, प्रत्येक होने और घटने वाली वस्तु-परिस्थिति का एकमात्र कर्ता और निर्देशक, वही परम तत्त्व आपके जीवन का लक्ष्य है। केवल उसे प्राप्त करके, उसकी अनुभूति पा कर ही आप अन्ततः परिपूर्ण सन्तोष, परम शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। एक ऐसी शक्ति पा सकते हैं जो सदा रहने वाली है, जो बड़े-से-बड़े सुख, आनन्द और प्रसन्नताओं से भी कहीं अधिक बढ़ कर है।

उन्हीं परमात्मा की कृपा-वृष्टि आप सब पर उसी प्रकार बनी रहे जैसे कि अभी तक सम्पूर्ण जीवन-भर रही है। आप भले ही यह जानते हों या नहीं, यह कृपा आपको निरन्तर घेरे हुए है, आप पर छायी हुई है, आपको सही दिशा की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती रही है, यह आपको अबाध रूप से ऐसे जीवन की ओर खींच लायी है जो अँधेरे में प्रकाश के समान है। यह एक उदात्त जीवन, एक भला और दिव्य जीवन है।

भले ही आपने इसे कार्य करते हुए नहीं देखा, भले ही आपने इसे नहीं पहचाना, तो भी यह आपको सही दिशा की ओर खींचती और आकर्षित करती रही

है, आपको भ्रान्तियों और संशयों से बचा कर सही निर्णय करवाती रही है, कष्टदायी प्रतीत होने वाली परिस्थितियों में ले जा कर भी सदैव अन्ततः शान्ति, भलाईद्वहआपकी सर्वोच्च भलाई की ओर, एक ऐसे लाभ की ओर ले जाती रही है जिससे बढ़ कर और कोई लाभ नहीं है।

सच्चे जिज्ञासु साधकों के साथ उनकी कृपा सदा ही रहती है। और यह सदैव सुन्दर और मनचाहे वेष में ही नहीं होती। जैसे कि एक कवि का कथन हैद्वह“यह क्या है, इसे न पहचानते हुए जिज्ञासु साधक कई बार भयभीत हो जाता है और भागने का प्रयत्न करता है; किन्तु एक बार भगवान् जिसे चुन लेते हैं, वह व्यक्ति किसी भी तरह बच नहीं सकता, अन्ततः जब और भाग न सकने पर भयभीत जीवात्मा बचती-बचाती थक कर गिर पड़ती है, तब उसे अनुभव होता है कि जिससे भयभीत हो कर वह भाग रही थी, उसी के सुरक्षित सान्निध्य में ही वह है।”

इस प्रकार भगवान् की कृपा आपका पीछा करते हुए, भगवान् की दिशा में ही ले जाती हैद्वहकिसी भयानक भाव से नहीं, प्रत्युत अत्यधिक प्रेम, दया और भलाई, और आपकी सर्वोत्तम अच्छाई के लिए ही। वह आपको भगवान् की दिशा में इसलिए ले जाती है, क्योंकि आपकी एकमात्र भलाई उसी में है। माँ अच्छी होती है, पिता भी अच्छे हैं, आपके सगे-सम्बन्धी भी आपके लिए अच्छे हैं; किन्तु भगवान् आपके माता, पिता, बन्धु और सखाद्वहसभी कुछ हैं। वे यह सब भी हैं और इसके अतिरिक्त और

भी बहुत-कुछ हैं। आपके जीवन का सत्य यही है, भले ही यह मीठा हो या कड़वा, कोमल हो या कठोर।

वह सदा आपको एक ही दिशा की ओर खींचते और प्रेरित करते हैं, आपको आपकी सर्वोच्च भलाई की दिशा की ओर ले जाते हैं। इसके लिए हमें उनका कितना कृतज्ञ होना चाहिए। यदि हम इसे समझ सकें, तो ज्ञात होगा कि कई बार तो हम अनजाने ही उनसे कृपा और आशीर्वाद प्राप्त करते रहते हैं।

अतः हमें विनम्रता और कृतज्ञतापूर्वक अब इस प्राप्त कृपा के साथ सहयोग देना चाहिए, इस कृपा के

अनुसार चलना चाहिए, स्वेच्छा से इसका हाथ पकड़ें; अपने पूरे मन से स्वयं को उसी दिशा की ओर ले जाने दें जिधर यह हमें ले जाना चाहती है। आगे की ओर, ऊपर की ओर, प्रभु की ओर! यही बुद्धिमत्ता है। भगवान् हमारे लिए जो कर रहे हैं, उसका उत्तर यही है। भगवान् की पुकार का यही उत्तर है। उनका कृपा को सहयोग दे कर उन्हें हमारी सहायता करने देना !

(अनुवादिका : श्रीमती सुधा भारद्वाज)

मुद्रणाधीन :

सन्त-चरित्र

लेखक : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

लगभग १०६ सन्तों की प्रेरक जीवन-कथाओं का यह संकलन हिन्दू, सिख, सूफी तथा ईसाई सन्तों के उत्कृष्ट उपदेशों का एक बहुमूल्य कोष है। इस पुस्तक में विभिन्न काल-खण्डों के सन्त-महात्माओं के व्यक्तिगत जीवन, साधना-पद्धतियों तथा उनके द्वारा दिये गये परामर्शों और चेतावनियों का विवरण पढ़ कर पाठक उस भावभूमि पर प्रतिष्ठित हो जाता है जो सन्त-महात्माओं के प्रत्यक्ष सान्निध्य में उपलब्ध होती है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह किसी बुद्धिजीवी शास्त्रज्ञ द्वारा नहीं; बल्कि एक महान् सन्त द्वारा लिखी गयी है। इस कारण सन्तों की जीवनियाँ एक विशिष्ट आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की जा सकी हैं। यह प्रस्तुति पाठकों-हृदयविशेषकर साधकों-हृदयपर एक वर्णनातीत आध्यात्मिक प्रभाव डालती है।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी की इस बहुमूल्य भेंट से निश्चित ही पाठकों के चेतना-स्तर का उन्नयन होगा।

पृष्ठ : ४३२

आकार : डेमी आक्टोवो

मूल्य : रु. १७०/-

©m{á-ñWmZ

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्द पब्लिकेशन लीग

पत्रालय : शिवानन्दनगरद्वार २४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

उपनिषद् ३

ब्रह्म परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ब्रह्म

तत्त्वमीमांसा

उपनिषदों के अनुसार यह सृष्टि तत्त्वतः एक आध्यात्मिक एकता है। जड़ या चेतन जो-कुछ भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है; अतः उसकी उपासना का अर्थ है ब्रह्मवस्तुओं के स्वामित्व की भावना का त्याग। इस प्रकार लोभ करने का अर्थ यह हो जाता है कि हम सर्वव्यापी सत्य के रूप में ईश्वर के अस्तित्व को ही नकार रहे हैं। जीवन और उसके क्रिया-कलाप परम सत्ता के ध्यान से पृथक् नहीं हैं। ईश्वर ही सर्वस्व हैं, यह स्वीकार करते हुए परिस्थितियों के साथ साहसपूर्वक निर्वाह करना और नेतृत्व तथा कर्तृत्व की भावनाओं से रहित हो कर कर्म करना ही वास्तविक ध्यान है।

मानवीय क्षमताओं की सहायता से परमात्मा को न देखा-सुना जा सकता है और न समझा जा सकता है। अहं का नाश होने के पश्चात् ही उसे ज्ञात किया जा सकता है। वह नेत्रों से देखता है, कानों से श्रवण करता है, मन से विचार करता है, बुद्धि द्वारा समझता है और प्राणों के द्वारा श्वास भी लेता है; किन्तु इन सारे उपकरणों से परमात्मा को नहीं समझा जा सकता। 'मैं उसे जानता हूँ' ब्रह्म ऐसा जो मानता है, वह वस्तुतः जानता ही नहीं। वह परमात्मा उसी के द्वारा जाना जाता है, जो यह नहीं समझता कि मैं कोई विशेष जानकारी रखता हूँ। यदि इसी जीवन में उसका

ज्ञान हो जाये, तो समस्त आकांक्षाओं का अन्त हो जायेगा। यदि मानव उसे इसी जीवन में ज्ञात नहीं कर पाता है, तो वह वास्तव में अपनी बहुत बड़ी हानि कर रहा है। जो ऋषि विश्व के प्रत्येक प्राणी में केवल उस आत्म-तत्त्व (परमात्मा) का ही दर्शन करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् अमर होते हैं। अतः मानव को परम सत्य-रूप परमात्मा का चिन्तन परम प्रेम और परम आनन्द का पर्याय मान कर ही करना चाहिए। तब विश्व से भी ऐसे चिन्तक को प्रतिदान में भरपूर प्रेम और आनन्द की प्राप्ति होती है।

इन्दिय-सुख क्षणिक है। इस सुख से मानव की ऊर्जस्विता का हास होता है तथा यह उसके विनाश का कारण बनता है। अधिकाधिक भोगों से युक्त दीर्घतम जीवन भी अन्ततोगत्वा मूल्यहीन ही है। इस विश्व में आत्मज्ञान ही जीवन का एकमात्र अभीष्ट उद्देश्य है। श्रेय और प्रेय में महान् अन्तर है। ये दोनों ही मानव के लिए उपलब्ध हैं। जो विवेकवान् है, वह इस अन्तर को समझता है तथा श्रेय का ही अनुसरण करता है। अज्ञानी प्रेय को स्वीकार करता है और निजी आमोद-प्रमोद में आसक्त होने के कारण वह मृत्यु के व्यापक जाल में जा फँसता है। वस्तुतः यहाँ कोई विविधता नहीं है। मानव को चाहिए कि विश्व के विविध पदार्थों में एक ही अविभाज्य तत्त्व का

दर्शन करे। जो यहाँ भेद और भिन्नता देखता है, वह बार-बार जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

जो इस तथ्य को जान लेता है, वह एक-साथ ही सभी-कुछ जान लेता है। जो उस परम तत्त्व को जान लेता है, वह 'वही' बन जाता है। 'वही' सर्वरूप है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्थाओं से परे है। वह सर्वपदार्थों का आदि और अन्त, शान्त, आनन्दरूप तथा अद्वैत है। वह ही सत्य, ज्ञान और अनन्त है।

जो उस परम तत्त्व और अपने अस्तित्व में भेद नहीं देखता है, वह एक-साथ ही सब-कुछ प्राप्त कर लेता है, एक-साथ ही सब-कुछ बन जाता है और त्वरित ही सब वस्तुओं को भोग लेता है। अत्यन्त भाग्यशाली है वह, और अद्भुत है उसका अनुभव, धन्य हैं उसके मित्र, जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हैं उसके सम्बन्धी जिसे ऐसे महापुरुष का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

परम तत्त्व चैतन्य रूप है। यह जीवन का मूल है। वह सूर्य के समान आलोकित है, चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान है, तारों की तरह टिमटिमाता है। पत्थरों में वही सोता है। वनस्पतियों में वही साँस लेता है। प्राणियों में वही चिन्तन करता है और मानवों में वही विवेचना करता है। विश्व के किसी भी भाग को उसके अन्य समस्त भागों के साथ जब तक न देखा जाये, तब तक उस भाग को सम्पूर्ण नहीं समझना चाहिए। सूर्य एवं चन्द्र उसके अंश मात्र हैं। सौर-मण्डल, नक्षत्र-लोक एवं खगोलीय पिण्डह्रदये सब भी उसके अंश हैं। यदि किसी विशेष वस्तु को ही

ध्यान का विषय निश्चित किया जाये, तो वह ध्यान पूर्ण नहीं होगा। यदि सत्ता के समग्र रूप को ध्यान का विषय निश्चित न किया गया, तो वह ध्यान अपूर्ण होगा। ध्यान का विषय पूर्णता ही हो सकती है। इस पूर्णता के पहलू हैं दृश्यता और मनोगम्यता। इस प्रकार के ध्यान में ध्याता का व्यक्तित्व सर्वव्यापक परम सत्ता में विलीन हो जाता है। ध्यान स्वयं विलीन हो जाता है और मात्र ध्येय ही शेष रह जाता है। जो इस रहस्य का ज्ञाता है, उसके कर्म सर्वतोमुखी तथा विश्वव्यापक बन जाते हैं। वह जो भोजन ग्रहण करता है, वह समग्र विश्व का नैवेद्य बनता है। उसके सन्तोष में समग्र विश्व को आनन्द एवं सन्तोष प्राप्त होता है। जो कोई भी उसे भोजन प्रदान करता है, उसका वह भोजन सृष्टि की वेदी पर सम्पन्न आध्यात्मिक यज्ञ बन जाता है। इस चिन्तन के साथ यदि कोई चाण्डाल को अन्न का दान करता है, तो सच ही वह परम तत्त्व को ही समर्पित होता है। जैसे भूखे बालक माता की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने हेतु उसके चारों ओर बैठ जाते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के समस्त जीव अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इस रहस्य के ज्ञाता की ओर निहारते रहते हैं।

असीम परम तत्त्व ही परमानन्द है। ससीमता में आनन्द नहीं है। जब मानव को एक परम तत्त्व के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखायी पड़ता, कुछ नहीं सुनायी पड़ता, कुछ नहीं समझ में आता, तब वह असीमता में विचरण करता है। जब वह उस तत्त्व के अतिरिक्त भी कुछ देख सकता है, सुन सकता है, समझ सकता है, तब वह ससीमता की संकीर्ण परिधि में फँस जाता है। असीम अमर तत्त्व है। ससीम मरणशील सत्ता है।

असीम अपनी महत्ता पर ही प्रतिष्ठित है। वह स्वयं अपने-आप पर ही आधारित है। उसे किसी अन्य आधार की आवश्यकता नहीं है। वह आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, सर्वत्र है। वह एक-साथ ही सब-कुछ है। जो इस तत्त्व को जानता है, संसार की हर वस्तु परम तत्त्वरूप उसकी आत्मा से ही प्रकट होती है। उसकी दृष्टि में व्यक्त और अव्यक्त समग्र ब्रह्माण्ड उसकी आत्मा से ही उद्भूत होता है। देश और काल की सीमाओं से परे रह कर ब्रह्माण्ड उसकी सेवा करने के लिए तत्पर रहता है।

जो उस परम तत्त्व की सर्वव्यापकता और सर्वोच्चता को समझता है, वह स्वयं सर्वव्यापक और सर्वोच्च हो जाता है। ज्ञान ही परम सत्ता है। ज्ञान शक्ति है। चैतन्य ही सत् और आनन्द है। जो उस असीम सर्वव्यापक परम तत्त्व को ससीम विश्व की वस्तुओं में ढूँढ़ता है, वह उसे नहीं पा सकता। असीम को ससीम द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। नित्यता की उपलब्धि अनित्यता के द्वारा नहीं होती। साधन तथा साध्यहृद्दोनों ही असीम परम तत्त्व हैं।

कोई भी मानव किसी भी वस्तु को, उस वस्तु के कारण नहीं प्रेम करता। उसका समस्त प्रेम अपनी ही (सर्वव्यापक) विराट् आत्मा के प्रति होता है। जो परम तत्त्व प्रत्येक वस्तु-पदार्थ में दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके कारण ही कोई वस्तु प्रिय होती है। प्रिय की अनुभूति में अनन्त ही अनन्त को बुलाता है। व्यक्ति एवं वस्तु अपने-अपने कारणों से प्रिय नहीं लगते। विश्व में सर्व प्रकार के प्रेम की जड़ स्वार्थ ही होता है; परन्तु द्रष्टा तथा दृश्य से परे उसका एक उच्चतर लोकातीत अर्थ भी होता है। जो सांसारिक प्रेम में

छिपे हुए रहस्य को जानता है, वह सत्य को जानता है तथा मरणशीलता की दासता से मुक्ति प्राप्त करता है। अपनी सर्वव्यापक आत्मा का ज्ञान सभी वस्तुओं का ज्ञान है; किन्तु जो किसी वस्तु को अपने से पृथक् अनुभव करता है, वह उस वस्तु को खो देता है।

जहाँ द्वैत या भेद-दृष्टि है, वहाँ ही मनुष्य किसी अन्य को देखता है, कोई दूसरी बात श्रवण करता है, कोई दूसरी वस्तु सूँघता है, किसी दूसरे के साथ बात करता है, किसी दूसरी वस्तु का स्वाद लेता है, किसी दूसरी चीज को स्पर्श करता है, किसी अन्य विषय के बारे में चिन्तन करता है और कोई दूसरी बात समझता है। किन्तु जहाँ अभेद या अद्वैत (दृष्टि) है, वहाँ मनुष्य उस परम तत्त्व के अतिरिक्त किसी अन्य को क्यों देखे और किसके द्वारा देखे? क्या और किसके द्वारा सुने या सूँघे, बोले या स्पर्श करे या सोचे? जिसके द्वारा मानव समस्त वस्तुओं को देख या जान पाता है, उसे वह किस प्रकार से और किसके द्वारा जाने? परम ज्ञाता का ज्ञान वह किस भाँति प्राप्त करे? यही ज्ञान सर्वोच्च ज्ञान की निधि है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बदले सारी पृथ्वी भी देनी पड़े, तब भी महत्त्व की दृष्टि से इस ज्ञान का पलड़ा धरती के पलड़े से भारी पड़ेगा। और धरती की क्यों, सभी मूल्यवान् वस्तुओं से भी अधिक मूल्यवान् है यह ज्ञान!

आध्यात्मिक साक्षात्कार के विषय को उपनिषद् इसी प्रकार निरूपित करते हैं। उनके अनुसार असत् से सत्, तम से ज्योति तथा नश्वरता से अमरत्व की ओर अग्रसर होने की ही आकांक्षा मानव-जीवन में होनी चाहिए।

(अनूदित)

बच्चों के लिए दिव्य जीवन :

नीति के पाठ ६

हृदय परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज हृदय

दिव्य जीवन बीमा

अपने जीवन का बीमा ईश्वर के यहाँ कराओ। वहाँ तुम्हें पूर्ण सुरक्षा मिलेगी। बाकी सभी बीमा-कम्पनियाँ डूब सकती हैं, पर यह बीमा कभी धोखा नहीं दे सकता।

इस बीमे के लिए कोई रकम नहीं जमा करानी पड़ती। केवल ईश्वर से प्रेम करना पर्याप्त है। केवल अपना हृदय ईश्वर को समर्पित करना पर्याप्त है। इससे अक्षय दिव्य सम्पदा प्राप्त होगी।

ईश्वर की महिमा गाओ। कीर्तन करो। सदा भगवान् के नाम का जप करो। सारे सांसारिक मोह छोड़ दो। तुम्हें सतत परम आनन्द प्राप्त होगा।

चरित्र

आदर्श नैतिक चरित्र से सम्पन्न बनो। सच्चरित्रता के बिना सच्ची और स्थायी सफलता नहीं मिलती। चरित्र बल है। उसके बिना जीवन विफल है।

कोई विषय दिमाग में ठूँसो मत। भाव समझ कर पढ़ो। समझ-समझ कर पढ़ो। तब पढ़ी हुई बात को याद रखना सरल हो जायेगा। एकाग्र हो कर पढ़ाई करो। सदा आशावान् रहो। सब-कुछ भली-भाँति पढ़ो।

पुराने पाठ बार-बार पढ़ो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे, तो उन्हें भूल जाओगे। जो भी पढ़ चुको, उसे लिख डालो। ईश्वर की प्रार्थना करो और उससे उसकी कृपा की याचना करो।

बड़ों की आज्ञा का पालन करो

अपने से बड़ों की आज्ञा का पूरा-पूरा पालन करो। उनकी निन्दा न करो। उनका अपमान न करो।

उनके प्रति कटु शब्दों का प्रयोग न करो। उन्हें सम्मान के साथ सम्बोधित करो। यदि तुम अपने माता-पिता का अपमान करोगे, तो जीवन में तुम्हें बहुत मुसीबतें उठानी पड़ेंगी।

गुरु की आज्ञा का पालन करो। उन्हें भगवान् समझ कर पूजा करो। वे तुम्हें विद्या देते हैं जो कि सर्वोत्तम वरदान है। अन्धकार मिटा कर वे तुम्हें ज्ञान का प्रकाश दिखाते हैं। जो अपने गुरु का अपमान करते हैं, उन्हें नरक का कष्ट भोगना पड़ता है।

माता-पिता, गुरु, भाई-बहनों की आज्ञा का पालन करोगे तो महापुरुष कहलाओगे; खूब वैभव, समृद्धि और सुख पाओगे।

स्वच्छ रहो

बिस्तर से उठते ही ठीक तरह से मुँह धोओ और दाँत साफ करो। फिर नहाओ। ईश्वर की स्तुति करो। हरि-नाम गाओ। देवी सरस्वती की पूजा करो। वह तुम्हें ज्ञान, विवेक और वाक्-शक्ति प्रदान करेंगी। तब बाकी काम करो।

जब तक मुँह न धोओ और दातुन न करो, तब तक कुछ न खाओ। कपड़े साफ रखो। भोजन से पहले हाथ अच्छी तरह साफ करो। नाखून न चबाओ। यह एक बुरी आदत है। हाथ साफ रखो। लिखते समय हाथ स्याही से न भरने पाये।

एकादशी की रात को भोजन न करो। ज्यादा मिठाई मत खाओ। सोने-चाँदी के आभूषण न पहनो। गद्दों पर मत सोओ। फैशन की चीजें खरीदने में पैसे बरबाद न करो। मितव्ययी और सादा बनो।

(अनुवादक : श्री त्रि. न. आत्रेय)

बाल-स्तम्भ :

सन्तानों के शृंगार माता-पिता

द्वि स्वामी रामराज्यम् द्वि

माता-पिता सन्तानों के लिए कितने कीमती होते हैं, इस बात को उजागर करने वाली दो घटनाएँ नीचे दी जा रही हैं।

(१)

नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस की सेना में जनरल थे। एक दिन उन्हें सूचना मिली कि शत्रु पक्ष के सैनिक आक्रमण करने वाले हैं। उन्होंने तुरन्त उस नगर को खाली करने का आदेश दे दिया, जहाँ उनकी सेना पड़ाव डाले हुए थी। उस नगर के वासी अपने-अपने मकान छोड़ कर भागने लगे। नगरवासियों पर अचानक आयी हुई इस विपत्ति पर नेपोलियन दुःखी हो रहे थे, परन्तु वह विवश थे। उन्होंने देखा कि एक हृष्ट-पुष्ट पहलवान अपने सिर पर एक टोकरा रखे हुए धीरे-धीरे चला जा रहा है। नेपोलियन ने उसे रोक कर पूछा "इस टोकरे में क्या है?"

“कुछ नहीं, सर।”

“कुछ तो होगा ही।”

“जी, मेरे जीवन की अमूल्य सम्पत्ति है इसमें।”

नेपोलियन ने पहलवान से टोकरा खोल कर दिखाने को कहा। टोकरा खोला गया। नेपोलियन आँखें फाड़े देखते ही रह गये। उसमें दो बूढ़े व्यक्ति बैठे हुए थे।

पहलवान ने कहा "ये मेरे माता-पिता हैं। मैं इन्हें किसी ऐसे स्थान में लिये जा रहा हूँ जहाँ मैं इनकी रक्षा कर सकूँ।”

नेपोलियन बोले "ठीक ही कहा तुमने, माता-पिता से अधिक मूल्यवान् सम्पत्ति और क्या हो सकती है तुम्हारे लिए?"

फिर उन्होंने स्वयं रुचि ले कर उसके माता-पिता को एक सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया।

(२)

तिब्बत की लोककथा है यह।

तिब्बत के कलियांग प्रान्त के एक गाँव में वानचुंग और उसका बेटा सानचुंग रहते थे। उस देश के राजा की आज्ञा से बूढ़े लोगों को परिवार में रहने की अनुमति नहीं थी। परिवार के सदस्य उन्हें पहाड़ों पर अकेले छोड़ देते थे। पहाड़ों पर ही भूख-प्यास या रोगों से तड़प-तड़प कर वे मर जाते थे।

जब वानचुंग बूढ़ा हो गया, तब सानचुंग उसे पीठ पर लाद कर पहाड़ की ओर चल पड़ा। अपने पिता को इस प्रकार पहाड़ पर छोड़ने का उसका मन तो नहीं था, परन्तु राजाज्ञा मानने के लिए वह विवश था। सानचुंग जिस पहाड़ी रास्ते पर चल रहा था, वह उसके लिए अपरिचित था। सानचुंग की पीठ पर चढ़ा हुआ बूढ़ा वानचुंग अपने हाथ फैला कर पेड़ों की टहनियाँ तोड़ता रहा और उन्हें जमीन पर गिराता रहा।

पहाड़ पर पहुँच कर सानचुंग ने एक झोपड़ी बनायी। उसमें पिता को बिठा कर वह चलने लगा। पुत्र और पिता दोनों ही रोने लगे। रोते-रोते पिता बोलाहूँ “बेटे, तुम रास्ता न भूल जाओ, इसलिए पहचान के लिए मैं पूरे रास्ते पर पेड़ों की टहनियाँ गिराता आया हूँ। तुम उन्हें देखते हुए घर पहुँच जाना।”

रोता-बिलखता सानचुंग घर पहुँचा। दो दिनों तक वह लेटा-लेटा रोता ही रहा। उसे यह बात भूलती नहीं थी कि पहाड़ पर पिता को असहाय दशा में छोड़ने वाले कृतघ्न पुत्र के लिए भी वानचुंग को चिन्ता थी कि कहीं वह रास्ता न भूल जाये। फिर एक रात वह चोरी-चोरी अपने पिता को घर ले आया। दूसरे दिन वह राजा के पास गया और बोलाहूँ “मैं अपने पिता को घर वापस ले आया हूँ। उनके बिना मेरा जीवन बिलकुल सूना हो गया था। घर-परिवार

शमशान की तरह मालूम होता था। इस प्रकार जीने की बजाय आपकी आज्ञा का उल्लंघन करने का दण्ड भुगतने के लिए मैं तैयार हूँ। मैं आपके सामने दण्ड पाने के लिए खड़ा हूँ।”

वानचुंग के पितृ-प्रेम से प्रभावित हो कर राजा ने उसे कोई दण्ड नहीं दिया। उसने बूढ़े लोगों को पहाड़ पर छोड़ आने का अपना आदेश भी वापस ले लिया।

बच्चो, माता-पिता सन्तानों के शृंगार होते हैं। साबुन, पाउडर, सुन्दर कपड़े तुम्हारा शृंगार नहीं हैं। तुम माता-पिता के शृंगार से अपने को सजाना। कैसे सजाओगे? उनका मान-सम्मान करके, उनकी पूजा करके, उनकी आज्ञायें मान कर। माता-पिता के शृंगार से अपने को सजाना तुम्हारे जीवन का सौभाग्य और सुख है।

□ □ □

आज से ही साधना आरम्भ कर दो। यह न कहो कि समय नहीं मिलता। मैं वैसी साधना ही नहीं बतलाता, जिसके लिए तुम्हें अलग से समय चाहिए। अपना काम इस प्रकार करते रहो कि वही साधना का प्रतिरूप बन जाये। जप करो या न करो, मैं तुम पर जोर नहीं डालूँगा; पूजा करो या न करो, मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूँगाहूँक्या जाने तुम हिन्दू हो या मुसलमान या बौद्ध या ईसाई-धर्म पर विश्वास करने वाले; किन्तु तुम जो कोई भी हो, मैं सद्गुणों के संचय के लिए तुम्हें बाध्य करूँगा। सद्गुणों का संचय किसी जाति-विशेष की साधना नहीं, दुर्गुणों का निराकरण किसी जाति-विशेष के लिए ही आवश्यक नहीं और आध्यात्मिक वृत्ति भारतीयों की ही सम्पत्ति नहीं हैहूँक्या प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक व्यक्ति का इस पर समान अधिकार है। देश, काल और नियमों के अनुसार एक देश में इसकी प्राप्ति के लिए एक प्रकार की साधना की जाती है, तो दूसरे देश में दूसरे प्रकार की। साधनाओं के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं, पर लक्ष्य एक ही है।

स्वामी

शिवानन्द

आदर्श ब्रह्मचारी हनुमान्

हृदय परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज हृदय

हनुमान् वायुदेवता पवन से अंजना के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उनका हनुमान् नाम हनुरुह नामक नगर पर रखा गया था, जिस पर उनके मामा शासन करते थे। हनुमान् का शरीर वज्रवत् दृढ़ था; अतः अंजना ने उनका नाम वज्रांग रखा। अनेक वीरोचित असाधारण कार्य करने के कारण वह महावीर के नाम से भी प्रसिद्ध हुए। बलभीम तथा मारुति उनके अन्य नाम हैं।

विश्व में हनुमान् के समान महान् वीर न अभी तक हुआ है और न भविष्य में होगा। अपने जीवन-काल में उन्होंने अनेक चमत्कार तथा बल और पराक्रम के अतिमानवीय असाधारण कार्य किये। उन्होंने अपने पीछे ऐसा नाम छोड़ा है, जो इस संसार का जब तक अस्तित्व रहेगा तब तक लाखों लोगों के मन पर अपना सशक्त प्रभाव डालता रहेगा।

हनुमान् सप्त-चिरंजीवियों में से एक हैं। वह एकमात्र ऐसे विलक्षण विद्वान् हैं, जिन्हें नौ व्याकरणों का ज्ञान है। उन्होंने सूर्यदेव से शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। वह ब्रह्मचर्य के मूर्त रूप हैं। वह ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी, बलवानों में सर्वश्रेष्ठ बली तथा वीरों में सर्वश्रेष्ठ वीर हैं। वह रुद्र की शक्ति हैं। जो हनुमान् का ध्यान तथा उनके नाम का जप करता है, उसे जीवन में बल, सामर्थ्य, गौरव, वैभव तथा सफलता प्राप्त होती है। वह भारत के सभी भागों में, विशेषकर महाराष्ट्र में पूजे जाते हैं।

हनुमान् में स्वेच्छानुसार रूप धारण करने की सिद्धि थी। वह अपने शरीर को अति-बृहत् और अँगूठे के नख के बराबर लघु बना सकते थे। उनमें अलौकिक बल था। वह राक्षसों के लिए आतंक थे। वह चारों वेदों तथा अन्य शास्त्रों में सुनिष्णात थे। उनके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनके पराक्रम, बुद्धि, शास्त्रज्ञान तथा अतिमानवीय बल से आकर्षित हो जाता था। उनमें असाधारण युद्ध-कौशल था।

हनुमान् श्री राम के प्रवर दूत, सैनिक तथा सेवक थे। वह भगवान् राम के उपासक तथा भक्त थे। राम उनके लिए जीवन-सर्वस्व थे। वह राम की सेवा के लिए जीते थे, राम में जीते थे तथा राम के लिए जीते थे। वह सुग्रीव के मन्त्री तथा घनिष्ठ मित्र थे।

हनुमान् का जन्म परम मांगलिक दिवस मंगलवार को चान्द्रमास चैत्र की अष्टमी को प्रातःकाल हुआ था। उन्होंने अपने जन्म से ही अपने असाधारण बल का परिचय दिया तथा अनेक चमत्कार किये। वे अपनी शैशवावस्था में सूर्य को खा जाने के लिए छलाँग लगा कर उन तक पहुँच गये और उन्हें पकड़ लिया। इससे समस्त देवता अत्यधिक व्याकुल हुए। वे कर-बद्ध हो शिशु के पास आये। उन्होंने सूर्य को मुक्त कर देने के लिए उनसे विनीत प्रार्थना की। शिशु ने उनकी प्रार्थना पर सूर्य को छोड़ दिया।

हनुमान् के एक अपराध के लिए एक ऋषि ने उन्हें शाप दिया कि वह जब तक श्री राम के दर्शन तथा भक्तिपूर्वक उनकी सेवा नहीं करेंगे, तब तक उन्हें अपनी महती शक्ति तथा पराक्रम की स्मृति नहीं रहेगी। हनुमान् की श्री राम के साथ प्रथम भेंट किष्किन्धा में हुई, जब श्री राम तथा लक्ष्मण सीता की खोज में वहाँ आये थे, जिन्हें रावण हर कर ले गया था। हनुमान् ने ज्यों-ही श्री राम को देखा, उन्हें अपनी शक्ति तथा पराक्रम का स्मरण हो आया।

हनुमान् ने सम्पूर्ण लंका जला डाली तथा राम को सीता का समाचार दिया। राम तथा रावण के मध्य हुए महायुद्ध में हनुमान् ने राक्षस-सेना के अनेक वीरों का संहार किया। उन्होंने अनेक अलौकिक कार्य किये। विशाल पर्वत को उठा कर ले जाना तथा अन्य बड़े-बड़े कार्यों को करना हनुमान् के लिए कुछ भी नहीं था। यह सब ब्रह्मचर्य-शक्ति के कारण ही था।

महायुद्ध समाप्त होने पर विभीषण लंका के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए। वनवास की अवधि

पूर्ण हो गयी। श्री राम, लक्ष्मण, सीता तथा हनुमान् पुष्पक विमान पर बैठ कर समय पर अयोध्या पहुँच गये। श्री राम का राज्याभिषेक-समारोह बड़े हर्षोल्लास तथा धूमधाम से किया गया। सीता ने हनुमान् को एक मुक्ताहार भेंट किया।

महाभाग राम-भक्त हनुमान् की जय हो! महावीर, निर्भीक योद्धा तथा ज्ञानवान् ब्रह्मचारी आंजनेय की जय हो, जय हो, जिनके समान संसार में अभी तक न कोई हुआ है और न भविष्य में कोई होगा!

हम सब उनके आदर्श ब्रह्मचर्यमय जीवन से प्रेरणा प्राप्त करें! आप सबको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो! आइए, हम उनकी महिमा का गान करें :

जय सियाराम जय जय सियाराम
जय हनुमान् जय जय हनुमान् ।
जय सियाराम जय जय सियाराम
जय हनुमान् जय जय हनुमान् ॥ (अनूदित)

व्यक्ति को अपने जीवन, समस्त क्रिया-कलापों और प्रेरणाओं में निहित उद्देश्य की खोज करने की कला और विज्ञान सीखना चाहिए। संसार में अधिकांश लोग उद्देश्यहीन जीवन व्यतीत करते हुए परिस्थितियों की झंझा में पड़ कर और अहंभाव को कुरेदने तथा इन्द्रियों को आलोड़ित करने से जो अस्थायी सुख की उत्तेजना प्रकट होती है, उससे प्रेरित हो कर असहाय-से इधर-उधर भटकते रहते हैं। सचमुच में यह दयनीय अवस्था है और जीवन की जिस अवस्था को मनुष्य सभ्यता और संस्कृति का शिखर माने बैठा है, वह वस्तुतः पतन का गर्त है। कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य स्वर्ग में सेवा करने के बजाय नरक में ही शासन करना चाहता है। परन्तु क्या यह उपयुक्त समय नहीं है कि मनुष्य अपनी भूल अनुभव करे और मर्त्य पार्थिव जीवन के रोग और पीड़ा का एकमात्र उपचार ढूँढ़ निकालने के लिए कटिबद्ध हो जाये?

स्वामी कृष्णानन्द

पावन-स्मृति में

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (१९२३-२००९)



जब कि रामकृष्ण मिशन २० वीं शताब्दी के मध्य से ही वेदान्त-दर्शन के प्रचार-प्रसार के लिए भली-भाँति सुप्रसिद्ध हो चुका था, लगभग बिल्कुल उसके साथ-साथ ही योग को उसी समय से पश्चिम जगत् में फैलाने के लिए परम पूज्य गुरुदेव के प्रारम्भिक शिष्यों को गौरव प्राप्त है, जब कि वहाँ योग का नाम भी तब कोई नहीं जानता था। १९५०-६० में जब यह शिष्य योग के अगुआ के रूप में भारतवर्ष से बाहर योग का प्रचार करने के लिए चले, तब तक इस विषय पर श्री गुरुदेव का बृहत् साहित्य पश्चिमी जगत् में अपनी जड़ें गहरी जमा चुका था। इन शिष्यों का कार्य

व्यक्तिगत रूप से वहाँ जा कर व्यावहारिक क्षेत्र में इस कार्य को सुचारु रूप से जारी रखना ही था।

जैसा कि श्री गुरुदेव के साहित्य से ही सिद्ध होता है कि वे योग और वेदान्तद्वन्द्वों ही विषयों में सर्वोत्कृष्ट दोहरी प्रतिभा से सम्पन्न थे। इसलिए उनके शिष्यों के द्वारा भी उनका ही अनुगमन किया जाना स्वाभाविक ही था; यद्यपि उनमें से कतिपय ने विशेष रूप से योग के प्रतिपादक के रूप में अपना एक उत्कृष्ट स्थान बनाया। यहाँ यह कहना असंगत न होगा कि प्राचीन उच्च साहित्य में वेदान्त को ज्ञानयोग के रूप में भी जाना जाता है।

आदरणीय श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का जन्म १९२३ में उत्तराखण्ड की पावन भूमि में अलमोड़ा में हुआ। १९४३ में २० वर्ष की आयु में गुरु की खोज में उन्होंने गृह त्याग दिया। उनकी यह खोज अन्ततः १९४५-४६ के लगभग उन्हें गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में ले आयी। १९४७ में मुख्यालय शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश में श्री गुरुदेव द्वारा उन्हें दशनामी परम्परा के अन्तर्गत १२ सितम्बर को संन्यास-दीक्षा प्राप्त हुई।

दिव्य जीवन संघ के सम्माननीय महासचिव के पद पर आसीन श्री स्वामी चिदानन्द जी श्री गुरुदेव के उत्तराधिकारी के रूप में संघ के परमाध्यक्ष बने। वह अपने परम प्रिय गुरुभाई श्री स्वामी सत्यानन्द जी के प्रति गहन प्रेम और सम्मान रखते थे तथा योग के क्षेत्र में और विशेष रूप से तन्त्रयोग और कुण्डलिनीयोग, जो कि योग

की ही शाखाएँ हैं, के क्षेत्र में उनके द्वारा किये गये उत्कृष्ट कार्यों के प्रति अपरिमित प्रशंसापूर्ण भाव रखते थे।

अपने गुरु के प्रति अविचल भक्ति तथा उसके प्रकटीकरण के रूप में गुरु तथा उनकी संस्था के प्रति अविचल निःस्वार्थ सेवा ने श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के उस मनह्वहजो प्रारम्भ से ही आध्यात्मिकता की ओर पूर्णतया झुका हुआ था, को सभी प्रकार के योगों-हठयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग, हठयोग इत्यादि में निपुण कर दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप वह योग के विशिष्ट ज्ञान में निष्णात हो गये।

आदरणीय श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों, मनीषियों और द्रष्टाओं के ज्ञान-प्रकाश को लिये हुए विश्व के चतुर्दिक् भ्रमण किया तथा योग के प्रतिपादक के रूप में विश्व-विख्यात हुए। सच्ची गुरु-भक्ति एवं गुरु-सेवा के फल-स्वरूप उन्हें गुरुदेव के भरपूर आशीर्वाद प्राप्त थे। उन्होंने आश्रम मुख्यालय के सभी विभागों में सेवा दी, जिनमें गुरुदेव की रचनाओं का सम्पादन, प्रकाशन और मुद्रण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त दीर्घ काल तक आश्रम के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे। उनकी लेखन-शैली अत्यन्त सशक्त एवं मनोहारी थी तथा वे उच्च श्रेणी के ओजस्वी वक्ता थे।

शिवानन्द आश्रम में १२ वर्ष तक अथक गुरु-सेवा करने के उपरान्त श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने १९५६ से एक परिव्राजक हो कर एशिया उपमहाद्वीप के अनेक स्थानों पर भ्रमण करने के उपरान्त, १९६२ में मुंगेर में 'बिहार योग विद्यालय'

की स्थापना की, जिसके माध्यम से 'इन्टरनेशनल योगा फैलोशिप मूवमेंट' प्रारम्भ की। शीघ्र ही उनकी यह संस्था अत्यन्त उन्नति करते हुए एक शक्तिशाली एवं विस्तृत रूप ले कर विश्वव्यापी मिशन बन गयी।

जब श्री स्वामी जी महाराज अपनी उपलब्धियों के चरम शिखर पर थे, उस समय उन्होंने उन सब स्व-रचित उपलब्धियों को त्याग दिया तथा योग आन्दोलन से स्वयं को पूर्णतया अलग कर लिया। १९८८ में वह मुंगेर छोड़ कर चले गये तथा २३ सितम्बर १९८९ को वैद्यनाथ धाम के निकट झारखण्ड के रिखिया में चले गये, जहाँ अपने जीवन का अन्तिम समय पूर्ण एकान्त में व्यतीत किया।

श्री स्वामी जी महाराज ने अनेकों को संन्यास परम्परा में दीक्षित किया था तथा लगभग सभी महाद्वीपों में उनके अनुयायी भक्त थे। वह महान् परोपकारी थे तथा अपने आश्रम के आस-पास के असंख्य निर्धन एवं जरूरतमन्दों को शिक्षा तथा चिकित्सा की सुविधाएँ उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अत्यन्त उदार-हृदय से उनकी आवश्यकता के अनुसार भारी मात्रा में उपहार दिया करते थे। यह उनके मानव मात्र के प्रति गहन प्रेम का परिचय देता है। २००७ में श्री स्वामी जी महाराज ने अपने एकान्तवास स्थान रिखिया को 'रिखिया पीठ' बनाने की घोषणा की। ५ दिसम्बर २००९ को उन्होंने महासमाधि ली। उनकी इस अन्तिम विदाई के दर्शनार्थ सहस्रों की संख्या में सौभाग्यशाली भक्त उपस्थित थे।

हरि ॐ तत्सत्!

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

समाचार और प्रतिवेदन

मुख्यालय के समाचार

‘शिवानन्द होम’ द्वारा सेवा

श्री गुरुदेव की अपार कृपा से तथा श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की अत्यन्त दया से दिव्य जीवन संघ मुख्यालय अपने ही एक अंग ‘शिवानन्द होम’, जो कि लक्ष्मणझूला के निकट तपोवन में स्थित है, के द्वारा अपनी विनम्र सेवा में निरन्तर संलग्न है। यह ऐसे आश्रय विहीन, निर्धन लोगों को चिकित्सीय सुविधा उपलब्ध कराता है, जिन्हें बीमार होने पर भरती हो कर इलाज कराने की आवश्यकता रहती है।

इस वर्ष जनवरी माह की असह्य ठण्ड ने ऐसे बहुत से लोगों के जीवन छीन लिये जो सड़क के किनारे किसी सूने कोनों में, प्लास्टिक की चादर के नीचे या झीने दुर्बल कम्बल में दुबक कर सर्दी से बचने का असफल प्रयास कर रहे थे। वर्षा की इस ऋतु में आश्रय रहित होना, परिवार विहीन होना या बिना छत के होना कोई छोटी बात नहीं है। जब सारा शरीर ठण्डा पड़ जाता है, हाथ-पाँव सुन्न हो जाते हैं, तो व्यक्ति उठने में भी असमर्थ हो जाता है, यहाँ तक कि दिमाग भी काम करना बन्द कर देता है। ऐसा ही एक रोगी के साथ हुआ, जो इसी माह भरती करने के लिए लाया गया था, पूरी तरह से सर्दी से ग्रसित, रक्ताल्पता का शिकार तथा मानसिक आघात से प्रभावित। उसकी आयु ८० वर्ष से अधिक ही रही होगी, आने के दो घण्टे के बाद ही उसने अन्तिम साँस छोड़ दी। परमात्मा उसकी आत्मा को शान्ति और सद्गति प्रदान करें! ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः!

एक अन्य कम आयु की शरणार्थी स्त्री, जो श्री गुरुदेव के पावन चरणों में आश्रय ग्रहण करने आयी, वह किशोरावस्था के ‘रियुमैथोराइड गठिया’ रोग से ग्रस्त थी। १० वर्ष के दीर्घकालीन रोग ने उसकी टाँगों और बाँहों के जोड़ों को लगभग अचल ही कर दिया था। अब उसका ठीक उपचार शुरू हो जाने और नित्य की मालिश और भौतिक चिकित्सा (फ़ीजियोथेरेपी) के द्वारा उसकी दशा में बहुत सुधार हो रहा है। उसने लिखित जप करना आरम्भ कर दिया है तथा ‘होम’ की अन्य रोगिणी महिलाओं के साथ गुलूबन्द आदि बुनना भी आरम्भ कर दिया है।

जब उसे ला कर होम के संकटकालीन विभाग में लिटाया गया, तो सर्वप्रथम उसके मुख से शब्द निकले, ‘भगवान् ने मुझे बचा लिया।’ ४५ वर्षीय उस व्यक्ति की दशा यह थी कि उसकी हड्डियाँ तक ठण्ड से सुन्न हो चुकी थीं, अल्पपोषित गरदन से नीचे का शरीर पूर्णतया गतिहीन स्थिति में था। तन्त्रिका चिकित्सक के निरीक्षण करने पर पाया गया कि उसकी रीढ़ की हड्डी गरदन के स्थान पर टूटी हुई थी, जिसकी सन्तुलित चिकित्सा (कन्ज़रवेटिव ट्रीटमेंट) करने की सलाह दी गयी। उसकी प्रसन्नता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि पूर्णतया अक्षम है कुछ भी कर पाने में, और इसीलिए जीवित रहने तक के लिए उसे हर पग पर सहायता की आवश्यकता है। किन्तु उसके ओठों पर मनोमुग्धकारी मुस्कान हर क्षण

देखी जा सकती है। उसकी आँखों में ऐसी गुह्य चमक है जो एक दिव्य परिपूर्णता की झलक दिखा जाती है।

“जब आपका कोई आश्रय तथा कोई सहारा नहीं होता, जब कोई आशा शेष नहीं रहती, जब आपका शरीर थक कर टूट चुका होता है और जब आपका दिमाग भी काम करना बन्द कर देता है, तब

आपका आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए सब बन्धन तोड़ कर स्वतन्त्र हो जाता है। तब बाहर का खोल या आवरण टूट जाता है और ऊर्जा अपने मूल-स्रोत में जा मिलने के लिए लौट जाती है।”

(श्री स्वामी शिवानन्द)

“भूखे को भोजन दें! नग्न को वस्त्र दें! रोगियों की सेवा करें! यही दिव्य जीवन है।” स्वामी शिवानन्द

मुख्यालय आश्रम में शिवरात्रि महोत्सव

आध्यात्मिक जीवन में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि उस सर्वशक्तिमान् प्रभु के प्रति श्रद्धा और प्रेम की ज्योति अपने अन्तर्मन में सदैव सतत प्रज्वलित रखी जाये। इस अन्तर्ज्योति को समय-समय पर पुनः-अनुप्राणित करते रहने के लिए ही हम धार्मिक उत्सव, अनुष्ठान, पूजा-उपासना इत्यादि किया करते हैं। महाशिवरात्रि महोत्सव मनाने के पीछे भी यही आध्यात्मिक उद्देश्य निहित है।

मुख्यालय आश्रम में १२ फरवरी २०१० को महाशिवरात्रि महोत्सव अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और उत्साहपूर्वक मनाया गया। उत्सव के ही एक भाग के रूप में ८ से ११ फरवरी तक नित्य दो घण्टे ‘ॐ नमः शिवाय’ पंचाक्षरी मन्त्र का कीर्तन किया जाता रहा।

महाशिवरात्रि दिवस का शुभारम्भ प्रातः ५ बजे प्रातःकालीन ध्यान-प्रार्थना सत्र के साथ हुआ तथा उसके तुरन्त बाद प्रभातफेरी निकाली गयी। विश्व-शान्ति एवं मानव-कल्याण हेतु यज्ञशाला में हवन किया गया। भगवान् विश्वनाथ मन्दिर के परिसर में प्रातः ७ बजे से सायं ७ बजे तक संन्यासियों, साधकों,

भक्तों और आश्रम में पधारे अतिथियों द्वारा पंचाक्षरी मन्त्र का अखण्ड कीर्तन किया गया। इस पावन पर्व के उपलक्ष्य में मन्दिर में अत्यन्त सुन्दर फूलों, गुलदस्तों, और रंगबिरंगी बिजलियों से भव्य श्रृंगार किया गया था।

रात्रि के ८ बजे महाशिवरात्रि-पूजन प्रारम्भ हुआ; रुद्रम् और चमकम् सहित चार प्रहरों में चार महापूजाएँ भगवान् शंकर को समर्पित की गयीं। आश्रम के समस्त संन्यासी, ब्रह्मचारी, अन्तेवासी साधक तथा अतिथि भक्त सम्पूर्ण रात्रि-भर का जागरण करते हुए इस महाभिषेक एवं अर्चना में सम्मिलित हुए। मन्दिर-गर्भगृह में महाभिषेक के साथ-साथ मन्दिर-परिसर में निरन्तर पंचाक्षरी मन्त्र का कीर्तन एवं हृदय-स्पर्शी शिव-भजन तथा स्तोत्र वातावरण में भक्ति-रस घोलते हुए श्रोताओं के हृदय को दिव्य भावों से ओत-प्रोत कर रहे थे। प्रातः ४ बजे मंगल आरती तथा अन्नपूर्णा हॉल में प्रसाद वितरण सहित कार्यक्रम सम्पूर्ण हुआ।

भगवान् शिव के मंगलकारी आशीर्वाद हम सब पर हों !

परम पूज्य श्री स्वामी निर्लिप्तानन्द जी महाराज की सांस्कृतिक यात्रा

दिव्य जीवन संघ मुख्यालय के उपाध्यक्ष परम पूज्य श्री स्वामी निर्लिप्तानन्द जी महाराज द्वारा दिसम्बर २००९ में प्रारम्भ की गयी सांस्कृतिक यात्रा जनवरी २०१० में भी चलती रही।

पोलसरा में दिव्य जीवन संघ उड़ीसा के राज्य स्तरीय 'अखिल उड़ीसा सम्मेलन' में भाग लेने के बाद स्वामी जी महाराज ने ३१ दिसम्बर को बालिगुआली चिदानन्द हर्मिटेज (पुरी) के लिए प्रस्थान किया।

१ जनवरी को स्वामी जी महाराज ने श्री कृष्णलाल भारतीय की श्री पुरुषोत्तम वाटिका में स्वर्गीय श्री गिरिधारीलाल केडिया (कटक) की पुण्य-स्मृति में आयोजित किये गये 'हरिहाट' में भाग लिया। वहाँ बहुत से वैष्णवों तथा अन्य सन्तों द्वारा विविध पावन ग्रन्थों का सामूहिक पाठ तथा सामूहिक मन्त्र-जप किया गया था। इस कार्यक्रम में भागवत आश्रम, पुरी के परम पूज्य श्री चैतन्य चरणदास बाबा जी भी सम्मिलित हुए थे।

पुरी के राजमहल में पुरी के महाराजा श्री गजपति जी के राज्याभिषेक का वार्षिकोत्सव मनाया गया था। गजपति महाराजा दिव्य सिंह देव जी के आमन्त्रण पर स्वामी जी महाराज २ जनवरी को इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सन्त भी इसमें सम्मिलित हुए थे।

गोवर्धन पीठ, पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य परम पूज्य श्री स्वामी निश्चलानन्द जी महाराज के निर्देशानुसार 'महोदधि आरती' का वार्षिकोत्सव ३ जनवरी को किया गया था। इसमें आमन्त्रित किये जाने पर श्री स्वामी जी महाराज सागर तट पर आयोजित इस वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। इसमें शंकराचार्य, पुरी के गजपति महाराजा तथा अन्य बहुत से सन्त भी सम्मिलित हुए थे। इस शुभ अवसर पर स्वामी जी महाराज ने आशीर्चन दिये।

७ से १६ जनवरी तक स्वामी जी महाराज भुवनेश्वर में रहे। 'शिवानन्द सैंटेनरी बॉयज़ हाई स्कूल, खण्डगिरि' के अध्यक्ष होने के नाते स्वामी जी महाराज ने विद्यालय सम्बन्धी विविध पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचारगोष्ठी की। यह एक आवासीय विद्यालय है जिसमें छठी से १० वीं तक के लगभग ३०० विद्यार्थी पढ़ते हैं। स्वामी जी महाराज ने अलग-अलग दिन सभी विद्यार्थियों-हृदयथा मेधावी छात्र जो मार्च में १० वीं की परीक्षा में बैठने वाले थे, १० वीं के अन्य विद्यार्थी-हृदयथापक-वर्ग, विभागों के अध्यक्ष-अध्यापक तथा अन्य न पढ़ाने वाले कर्मचारी, सभी से अन्तरंग वार्तालाप किया तथा इसके अतिरिक्त सभी विद्यार्थियों को एकसाथ भी सम्बोधित किया। १३ जनवरी को वे प्रबन्धक समिति की बैठक में सम्मिलित हुए। यह सब विद्यालय के प्रबन्धन को अधिक सुचारु रूप से चलाने में अत्यन्त सहायक हुआ।

१२ जनवरी को श्री स्वामी जी महाराज केन्द्रपाड़ा जिले के नलपारि में स्थित चिदानन्द सेवाश्रम गये। वहाँ बहुत से भक्त एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर आयोजित एक सत्संग में स्वामी जी महाराज ने प्रवचन दिया।

१४ जनवरी को भुवनेश्वर में व्यासकवि फकीर मोहन समिति ने जयदेव भवन में व्यासकवि फकीर मोहन की १६७ वीं जन्म जयन्ती का महोत्सव आयोजित किया था। स्वामी जी महाराज को इस कार्यक्रम में अध्यक्ष पद पर आसीन हो कर भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था। गजपति महाराजा श्री दिव्य सिंह देव जी मुख्य अतिथि थे। स्वामी जी महाराज अध्यक्ष पद पर थे। इस शुभ अवसर पर 'कल्चरल हैरिटेज आफ़ उड़ीसा' के १२ वें अंक का उन्मोचन किया गया जो कि पूर्णतया जगन्नाथ भगवान् को समर्पित था। स्मृति संसद अपने कार्यकारी अध्यक्ष, श्री गोपीनाथ महान्ति, आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त) के निर्देशन में गत कुछ वर्षों से क्रमशः प्रान्त के प्रत्येक जिले को इस 'कल्चरल हैरिटेज आफ़ उड़ीसा' का एक-एक अंक समर्पित करते हुए प्रकाशित कर रही

है। अब तक इसके कुल ११ अंक प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से गत दो अंक पुरी जिले पर थे। अब यह पुरी को समर्पित तृतीय अंक भगवान् जगन्नाथ के सम्बन्ध में निकाला गया था। यह अत्यन्त उत्कृष्ट कार्य है तथा गहन प्रशंसनीय है। स्वामी जी महाराज ने इस कार्यक्रम में प्रवचन दिया।

स्वामी जी महाराज पुनः बालिगुआली आश्रम गये तथा १८ से २५ जनवरी तक वहाँ रहे। १९ जनवरी को श्री स्वामी जी महाराज बालीघाई में प्रज्ञान मिशन के हरिहर गुरुकुल आश्रम गये तथा वहाँ उन्होंने 'वार्षिक सघन अन्तर्राष्ट्रीय क्रियायोग परिसंवाद' में सम्मिलित होने वाले भागीदारों को सम्बोधित किया। स्वामी जी महाराज ने 'योग के महत्त्वपूर्ण पहलु' विषय पर प्रवचन दिया। यह परिसंवाद १४ से २० जनवरी तक था।

तदुपरान्त श्री स्वामी जी महाराज ने पश्चिम बंगाल के लिए प्रस्थान किया। दिव्य जीवन संघ, पश्चिम बंगाल का राज्य स्तरीय साधना शिविर २७ से ३१ जनवरी तक आयोजित किया था। स्वामी जी महाराज ने सम्पूर्ण साधना शिविर में भाग लिया। २७ जनवरी की सन्ध्या को स्वामी जी महाराज ने इसका उद्घाटन किया। अन्य सभी दिन उन्होंने प्रातः ध्यान-प्रार्थना सत्र में भाग लिया तथा साथ ही नित्य पूर्वाह्न सत्रों में तथा अपराह्न सत्रों में भी

प्रवचन दिये, केवल ३१ को छोड़ कर, क्योंकि उस दिन पूर्वाह्न सत्र में ही शिविर समाप्त हो गया था। उनके प्रवचनों में साधना के विविध पहलुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला गया था। इस साधना शिविर में आदरणीय श्री स्वामी शिवानन्द गुरुसेवानन्द जी, श्री स्वामी शिवचिदानन्द जी, श्री स्वामी सेवानन्द जी, श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी, श्री स्वामी देवभक्तानन्द जी, श्री स्वामी चित्स्वरूपानन्द जी इत्यादि भी सम्मिलित हुए थे। आसन-प्राणायाम की कक्षाएँ श्रीमती एवं श्री अरविन्द पारेख जी ने लीं।

२ फरवरी को स्वामी जी महाराज ने श्रीमती एवं श्री आर. एन. दास के साल्टलेक के निकट स्थित निवास-स्थान पर होने वाले सत्संग में भाग लिया, जिसमें पर्याप्त संख्या में भक्त जन उपस्थित थे। स्वामी जी महाराज ने सत्संग में प्रवचन दिया। स्वामी जी महाराज श्री प्रियव्रत मुखर्जी एवं श्रीमती प्रभा मुखर्जी के निवास पर ४ जनवरी को गये तथा वहाँ आयोजित सत्संग में भाग लिया।

८ फरवरी को ईस्ट पंजाबी बाग स्थित स्वामी शिवानन्द मैमोरियल इन्स्टीट्यूट' के न्यासी मण्डल (ट्रस्ट बोर्ड) की सभा थी। स्वामी जी महाराज ने इसके चेयरमैन (अध्यक्ष) के रूप में इसमें भाग लिया।

परम पूज्य श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज की सांस्कृतिक यात्रा

ब्रह्मलीन श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के उन प्रारम्भिक शिष्यों में से थे, जिन्होंने गुरुदेव तथा उनके मिशन के लिए केरल में अथक सेवा की। ब्रह्मलीन श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के एक शिष्य, कन्याकुमारी के श्री स्वामी मुक्तिस्वरूपानन्द जी तथा परम पूज्य श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के भक्तों ने उनकी जन्म शताब्दी मनाने का आयोजन २१ जनवरी २०१० को कन्याकुमारी के विवेकानन्द केन्द्र में किया था। परम पूज्य श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज जन्म शताब्दी

महोत्सव समिति के आमन्त्रण पर इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए तथा श्री स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज के उत्कृष्ट जीवन पर प्रवचन दिया। उसके उपरान्त स्वामी जी महाराज 'श्री स्वामी शिवानन्द चैरिटेबल हास्पिटल, पत्तमडै' के न्यासी बोर्ड की मीटिंग में सम्मिलित होने के लिए २२ जनवरी २०१० को पत्तमडै गये।

आन्ध्र प्रदेश के कडापा जिले के पुल्लमपेट गाँव में २४ से २६ जनवरी २०१० तक ३६ वाँ अखिल आन्ध्र दिव्य जीवन संघ सम्मेलन आयोजित किया गया था। श्री एम. टी. अलवार, हिन्दुपुर, श्री समुद्राल लक्ष्मणैया, श्री

बी. अरुणदेवी, श्री चदलवाडा वेंकटशेषैया, गुन्दूर, परम पूज्य श्री स्वामी विद्याप्रकाशानन्द जी, शुक- ब्रह्माश्रमम्, श्री काळहस्ती तथा अन्य सुप्रसिद्ध वक्ता, विद्वान् सन्त इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए तथा उपनिषदों, गीता और अन्य महान् सन्तों के सन्देशों से पूर्ण प्रवचनों द्वारा श्रोताओं को उद्बोधित किया। श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर आसीन थे, उन्होंने परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज द्वारा प्रदर्शित 'दैनिक जीवन में साधना' विषय पर प्रवचन दिया। इस सम्मेलन में ३००० से भी अधिक स्थानीय लोगों ने भाग लिया। प्रबन्धक समिति ने सभी प्रतिभागियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने में अथक परिश्रम किया। भारी संख्या में एकत्रित लोगों तथा अन्य

सभी तक गुरुदेव का सन्देश प्रसारित करने के लिए सम्पूर्ण कार्यक्रम इलेक्ट्रानिक मीडिया द्वारा कवर किया गया था।

'इन्दिरा गान्धी नेशनल फारेस्ट एकाडेमी, देहरादून' ने निदेशक ने इंडियन फारेस्ट सर्विस प्रोबेशनरज़ (२००८-२०१०) को सम्बोधित करने के लिए श्री स्वामी जी महाराज को आमन्त्रित किया था। अतः श्री स्वामी जी महाराज १६ फरवरी २०१० को वहाँ गये तथा 'एथिक्स इन पर्सनल लाइफ' (निजी जीवन में नैतिकता) विषय पर प्रभावशाली प्रवचन दिया। कोर्स में भाग लेने वालों के अतिरिक्त प्राध्यापक वर्ग भी इस प्रवचन-श्रवण में सम्मिलित थे। निदेशक ने श्री स्वामी जी महाराज को प्रत्येक वर्ष कोर्स के भागीदारों को सम्बोधित करने के लिए आने का अनुरोध किया।

पुण्य-स्मृति में

श्रीमती मृदुलाबेन त्रिवेदी

हम गहन शोक सहित श्रीमती मृदुलाबेन त्रिवेदी के ७ फरवरी २०१० को अहमदाबाद में हुए निधन की सूचना दे रहे हैं। वह १९६२ में विवाहोपरान्त अपने पति श्री गुणवन्तराय एन. त्रिवेदी के साथ श्री गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त करने आश्रम आयी थीं।

१९९२ से वह श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की आज्ञानुसार अपने पति सहित आश्रम के अन्तेवासी के रूप में रहते हुए साधना और सेवा समर्पित जीवन व्यतीत कर रही थीं। शिवानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय, 'शिवानन्द होम' तथा आश्रम अन्तेवासियों के लिए 'विशेष भोजन' सुलभ कराने में उन्होंने गहन सेवा-कार्य किया। इसके साथ ही गुजरात से 'नेत्र शिविर' के लिए प्रतिवर्ष आने वाली टीम के साथ भी उन्होंने अथक सेवा की। अगस्त २००७ में अपने पति के निधन के उपरान्त स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वह अपनी सुपुत्री के साथ अहमदाबाद चली गयी थीं। वहीं उन्होंने शान्तिपूर्वक अन्तिम श्वास ली।

परम पिता परमात्मा एवं परम पूज्य श्री गुरुदेव से हम दिवंगत आत्मा की परम शान्ति और सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं!

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

शिवानन्द आश्रम, दिव्य जीवन संघ मुख्यालय में संन्यास-दीक्षा

पावन महाशिवरात्रि, शुक्रवार, १२ फरवरी २०१० के शुभ दिवस को दिव्य जीवन संघ के परमाध्यक्ष परम पूज्य श्री स्वामी विमलानन्द जी महाराज ने शिवानन्द आश्रम, शिवानन्दनगर में माँ गंगा के पावन तट पर गुरुदेव कुटीर में परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज तथा परम आराध्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की दिव्य पावन उपस्थिति में संन्यास-दीक्षा दी।

निम्नांकित व्यक्तियों को दशनामी संन्यास परम्परा में दीक्षित किया गया है :

<u>पूर्वाश्रम-नाम</u>	<u>संन्यास-नाम</u>
१. ब्रह्मचारी आत्मनिष्ठ चैतन्य	स्वामी आत्मनिष्ठानन्द सरस्वती
२. ब्रह्मचारी ब्रह्मात्म चैतन्य	स्वामी ब्रह्मात्मानन्द सरस्वती
३. ब्रह्मचारी अमृत चैतन्य	स्वामी अमृतानन्द सरस्वती
४. ब्रह्मचारी गुरुप्रेम चैतन्य	स्वामी गुरुप्रेमानन्द सरस्वती
५. ब्रह्मचारी रामनिष्ठ चैतन्य	स्वामी रामनिष्ठानन्द सरस्वती
६. ब्रह्मचारी शाश्वत चैतन्य	स्वामी शाश्वतानन्द सरस्वती
७. ब्रह्मचारी दामोदर चैतन्य	स्वामी दामोदरानन्द सरस्वती
८. ब्रह्मचारी रामप्रेम चैतन्य	स्वामी रामप्रेमानन्द सरस्वती
९. श्री प्रसाद राव पटनायक	स्वामी प्रणवात्मानन्द सरस्वती
१०. श्री एच. शिवरामकृष्ण	स्वामी शिवराघवानन्द सरस्वती
११. श्री मलय साहू	स्वामी अक्षरानन्द सरस्वती
१२. श्री विजय कुमार साहू	स्वामी विमुक्तानन्द सरस्वती
१३. श्री सैबाल के. घोष	स्वामी शारदानन्द सरस्वती
१४. श्री मिलिन्द एस. कुलकर्णी	स्वामी भूमानन्द सरस्वती
१५. श्री विद्याधर साहू	स्वामी श्रीधरानन्द सरस्वती
१६. श्री के. येयिल आरसू	स्वामी सदाशिवानन्द सरस्वती
१७. श्री स्वामी सदानन्द	स्वामी सदानन्द सरस्वती
१८. स्टार आग्नेनबर्ग	स्वामी दिव्यभावानन्द सरस्वती
१९. सुश्री पुष्पा खतूरिया	स्वामी चित्निष्ठानन्द सरस्वती

चिदानन्द-चिन्तन

जैसा आपका विचार होगा, उसके अनुरूप ही आपका भविष्य होगा, इसलिए सदा सद्विचारों के चिन्तन का ही अभ्यास करें। यही सफलता के रहस्य की कुंजी है। यदि विचार करते-करते मन अशुभ विचारों में भटक जाये, तो उसे बार-बार उनसे बलात् प्रत्यावर्तित कर सद्विचारों में संलग्न करें। तभी आप कुछ कर सकेंगे।

कोई भी व्यक्ति अपना अहित नहीं चाहता; किन्तु किसमें हित है और किसमें अहित, इसे कोई विरला ही जानता है। विवेक द्वारा ही हित तथा अहित में अन्तर कर पाना सम्भव है। विवेक ज्ञान से आता है और ज्ञान का उदय अज्ञान को नष्ट करने पर ही होता है।

लाख प्रयत्न करने पर भी अन्धकार विदूरित नहीं होता। चाहे जेब में करोड़ों रुपये रख कर घूमते रहें; किन्तु क्या अन्धकार भगाया जा सकता है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि अन्धकार के निवारण के लिए उसके विरोधी गुणह्वप्रकाश को लाना होगा। इसी प्रकार स्वार्थ को निःस्वार्थ भाव से ही दूर किया जा सकता है। अज्ञान मिटाने के लिए ज्ञान प्राप्त करना होगा। अवगुणों का उन्मूलन गुणों के विकास से किया जाता है। जब तक मन सात्त्विक गुणों से पूर्ण नहीं होता, पवित्र नहीं होता, तब तक भगवद्-साक्षात्कार असम्भव ही है।

अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए कि जिससे दूसरों को प्रसन्नता मिल सके, दूसरों को लाभ हो सके तथा दूसरों की सहायता हो सके। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो उससे कम-से-कम दूसरों के कष्टों को, दुःखों को तो किसी प्रकार कम किया ही जा सकता है। ऐसा ही जीवन, वास्तव में जीवन है। यही हमारा धर्म है।

शान्ति अपने से बाहर की वस्तु नहीं है। जब तक हम उसे बाहर-ही-बाहर खोजते रहते हैं, तब तक भटकते रहते हैं और जब हम अन्तर्मुख हो कर स्वयं में उसकी खोज आरम्भ कर देते हैं, तो धीरे-धीरे ठीक दिशा की ओर बढ़ने लगते हैं और अन्ततोगत्वा हमें शान्ति का अनुभव होने लगता है। इसके लिए नियमित तथा निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है।

हमारी संस्कृति हमें सिखाती है कि हम स्वयं के लिए नहीं दूसरों के लिए जियें, स्वयं आधा पेट खा कर दूसरों की भूख मिटायें तथा स्वयं कष्ट सह कर दूसरों का कष्ट दूर करें। जीवन का यही रहस्य है। इसी को जीवन जीना कहते हैं और इसमें ही मानव-जीवन की सार्थकता है।

आप शरीर, मन और बुद्धि नहीं हैं। आप दिव्य हैं, महान् हैं। आप अस्थि और मज्जा-रचित इस नाशवान् शरीर से तथा परिवर्तनशील मन एवं बुद्धि से

पृथक् और भिन्न हैं। आप निर्विकल्प, निर्विकार, असीम, अदृश्य आत्मा हैं। आप व्यर्थ ही विषय-वासनाओं की कष्टप्रद अवस्थाओं में पड़े हैं। आप स्वप्न देख रहे हैं। यह सत्य नहीं है, यथार्थ नहीं है। जागिए और निज-स्वरूप को पहचानिए।

जीवन 'साधना' तथा जीवन-क्रम एक 'आध्यात्मिक प्रक्रिया' है। साधारणतया मन, वचन और कर्म से यज्ञ-कार्य सम्पन्न होता है। इन्हें स्वार्थ-सिद्धि मात्र के लिए प्रयुक्त नहीं करना चाहिए, अन्यथा इनसे केवल अहंकार में ही वृद्धि होती है। सम्पूर्ण जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियों को प्राणिमात्र की सेवा, सुख तथा उपकार के निमित्त उत्सर्ग कर देना चाहिए।

जो-कुछ भी आप बनना चाहते हैं, बन सकते हैं। यही कर्म तथा कर्म-फल का नियम है। जो भी कार्य आप करेंगे, उसका परिणाम अवश्यम्भावी है। अपने प्रारब्ध के लिए आप स्वयं उत्तरदायी हैं। अपने भाग्य के आप स्वयं निर्माता हैं। आज ही निश्चय कीजिए और कैवल्य-पद प्राप्त कीजिए।

गुरु को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी यदि शिष्य को किसी वस्तु का अभाव खटकता है, किसी अनुभव तथा सुख की आवश्यकता होती है, तो इसका अर्थ है कि उसकी भक्ति, साधना तथा विश्वास में कहीं-न-कहीं कोई त्रुटि अवश्य है। उसने गुरु को अशेष आत्म-समर्पण नहीं किया है। गुरु को प्राप्त कर लेने के पश्चात् तो सभी इच्छाएँ तथा कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

जो कार्य मैं स्वयं नहीं कर सकता, उसे मैं दूसरों से करने के लिए कदापि नहीं कह सकता।

मनुष्य का जन्म मुख्यतः दो कार्यों के लिए हुआ है—ह्रस्वपरोपकार तथा भगवद्-भक्ति। इस संसार में ह्रस्वक्षण-भंगुर संसार में पल-भर का जीवन है; अतः इसे पर-हित में लगाना चाहिए। मनुष्य तो पथिक है। पथिक का किसी स्थान से मोह नहीं रहता। वह अपने गन्तव्य की ओर सदा ध्यान रखता है। सेवा से मन शुद्ध होता है, प्रसन्नता मिलती है। इन बातों पर विचार करना चाहिए। यही हमारी संस्कृति का तत्त्व है।

जीव ब्रह्म का ही अंश है, इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जिन व्यक्तियों ने इस बात को समझा, वे महापुरुष बन गये, उनका जीवन दिव्य हो गया और वे ईश्वर हो गये।

पुष्प खिलता है सौन्दर्य बिखेरने के लिए, दीपक जलता है प्रकाश फैलाने के लिए और अगरबत्ती जलती है सुगन्ध प्रसारित करने के लिए—ह्रस्वअर्थात् जो भी अन्दर की वस्तु है, उसे बाहर लाना प्रकृति का नियम है। मनुष्य के भीतर दिव्यता है; आत्म-तत्त्व है; शक्ति, आनन्द और प्रकाश है। उसे बाहर निकालना चाहिए, व्यवहार में लाना चाहिए। यही जीवन है। इसी से जीवन दिव्य बनता है।

व्यक्ति वस्तुतः बुरा नहीं होता। उसके विचार में, उसकी भावना में विकार उत्पन्न हो सकता है, पर उसमें परिवर्तन भी लाया जा सकता है। फिर यदि तुम योगी हो, तो तुममें भले-बुरे का भेद ही कैसा! समदृष्टि रखो। तुम्हारी दृष्टि में तो लोगों के गुण ही आने चाहिए।

भाव से ही साधना में सफलता प्राप्त होती है। किसी भी कार्य के पीछे निहित भावना का ही अधिक महत्त्व है। निःस्वार्थ तथा निष्काम-भाव से किया गया कार्य ही सत्कार्य है। भाव-रहित कार्य तो यन्त्रवत् क्रिया है। जो भी सेवा करो, भाव से, हृदय से करो। स्मरण रहे कि भाव से की गयी सेवा कभी निष्फल नहीं जाती।

पूजा के साथ सेवा करने से उसका महत्त्व दुगुना हो जाता है। जैसे पक्षी दोनों पंखों के बिना नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार वही पूजा फलदायक बनती है, जिससे किसी की सेवा भी होती हो। यदि पूजा के साथ-साथ कटु शब्दों का भी प्रयोग किया जाये, तो उसका प्रभाव क्षीण हो जायेगा।

एक दिन हम सबको इस संसार से जाना ही है। मुट्टी बाँध कर कुछ लाये थे। यहाँ संसार के बन्धनों में फँस कर, माया-जाल में उलझ कर सब-कुछ खो दिया और अब खाली हाथ पसारे चले जायेंगे। व्यक्ति यदि अपने साथ कुछ ले जाना चाहता है, तो उसे कुछ समेट कर रखना चाहिए। धन-दौलत, मान-सम्मान, स्त्री-पुत्र तो कोई साथ नहीं जाता; तब जो साथ जा सकता है, उसी के लिए प्रयास करना चाहिए। सेवा,

त्याग, भजन, कीर्तन, पूजा, भक्तिद्वन्द्वसे कोई लूट नहीं सकता। यही शाश्वत सम्पत्ति है।

व्यक्ति के जीवन में जन्म-दिन का बड़ा महत्त्व है। प्रत्येक जन्म-दिन हमें यह स्मरण दिलाता है कि हमारी यह अमूल्य आयु क्षीण होती जा रही है; अतः हमने जिस महान् उद्देश्य के लिए जन्म लिया है, उसे पूरा करने के लिए प्रयत्नशील हों। जन्म-दिन व्यक्ति के लिए स्वर्णिम द्वार भी खोलता है, जिसमें प्रवेश कर वह स्वयं को तथा स्वयं को बनाने वाले विधाता को, उस परब्रह्म परमात्मा को पहचान सके।

मग्न बनो। सद्व्यवहार करो। अहंकार का त्याग करो। सत्य बोलो। दोष-दृष्टि का परित्याग करो। नाम-रूपों का त्याग करो। तत्त्व को पहचानो। वह नित्य-शुद्ध, सर्वत्र, सर्वशक्तिमान्, अजर, अमर, अचल, अशेष, अनन्त और पूर्ण है। उसी का सदा चिन्तन करो। दृष्टिकोण बदलो। तुम आत्म-साक्षात्कार कर लो।

साधक के जीवन में नियमितता का बड़ा महत्त्व है। आपात्काल में भी नियमित कार्य अवश्य करना चाहिए, भले ही उन्हें स्वल्प काल तक अथवा स्वल्प मात्रा में करें। साधना में नियमित अभ्यास तथा दृढ़ निश्चय परमावश्यक है। साधना में अनियमित होने से मन बड़ा चंचल हो जाता है। मनोनिग्रह के अभाव में साधना सम्भव नहीं है। नियमितता मन का निग्रह करने में भी सहायता करती है।

आध्यात्मिक जीवन के मौलिक सिद्धान्त अपरिवर्तनशील होते हैं। भिन्न-भिन्न सन्त, महात्मा, तपस्वी, महापुरुष आदि उन्हें अनेक भाषाओं में, भिन्न-भिन्न शब्दों में व्यक्त करते आये हैं; किन्तु हम यदि गहराई से उन पर विचार करें, तो ज्ञात होगा कि उनमें पूर्ण समानता है। हम अपनी बाह्य दृष्टि से, भाषा के जाल में फँस कर उनमें अन्तर कर लेते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनमें कोई भेद नहीं होता।

अपने तुच्छ व्यक्तित्व के साथ तादात्म्य का विचार ही आपके सबसे महान् बन्धन तथा क्लेश का कारण है। वही मानव के सभी दुःख, असन्तोष, विरोध तथा संघर्ष का मूल कारण है।

मन बड़ा चंचल है। वह एक पल भी कहीं रुकता नहीं, बैठता नहीं, पलक झपकते ही सैकड़ों मील की सैर कर आता है। जहाँ हम रहते हैं, हमारा मन वहाँ से दूर-दूर रहता है। यदि हम अपने इस मन को सदा अपने पास टिकाये रख सकें तब जहाँ हम बैठे हैं, जहाँ हम रहते हैं तथा जहाँ हम काम करते हैं वहाँ पर उसे बाँध कर अपने निकट रखने का अभ्यास कर लें, तो निश्चित रूप से हम आत्मिक शान्ति का अनुभव कर सकेंगे।

व्यक्ति में कितनी विद्वत्ता, बुद्धि और विवेक है तब इसका निर्णय उसके व्यवहार से होता है। यदि व्यक्ति इनका सदुपयोग नहीं करता, तो इनकी उपलब्धि व्यर्थ ही है। शुद्ध विचारों के सम्मुख मलिन विचारों के आत्म-समर्पण करने पर ही व्यक्ति का जीवन दिव्य बनता है।

कोठी-बँगले में कितने ही तार के जाल बिछे हों, कितने ही सुन्दर बल्ब लगे हों; किन्तु बिना विद्युत् के प्रकाश सम्भव नहीं है। इसी प्रकार बिना प्राण के यह शरीर व्यर्थ है, मिट्टी है। जिसने हममें प्राण फूँका है, उसे जानना चाहिए। वही हमारा पिता है, हमारी माता है। जो-कुछ हमने पाया है, वह सब उसी परम पिता परमात्मा की कृपा की देन है। हम उसे भूल कर भी याद नहीं करते और वह हमें भूल से भी नहीं भूलता।

सत्य का अर्थ है द्वन्द्वप्रेम, दिव्यता। मन, वचन और कर्म से आत्मा में निवास करना तभी सम्भव है, जब ये सत्य द्वारा नियन्त्रित हों।

नये वर्ष से पूर्व हमें आत्म-परीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण द्वारा विचार करना चाहिए कि हम अपने गन्तव्य की ओर कितना आगे बढ़े हैं और कितना चलना अभी शेष है; अपनी राह में काँटों को कितना हमने हटाया है और फूलों के कितने पौधे हम लगा सके हैं। लक्ष्य-प्राप्ति के लिए हमें निरन्तर अविराम गति से चलते रहना होगा।

वैराग्य का अर्थ है द्वन्द्वराग का अभाव। व्यक्ति में वैषयिक सुखों के प्रति राग होता है। जिसमें राग नहीं है, वह वैरागी है अर्थात् उसमें विरक्ति है। वैषयिक सुखों से केवल क्षणिक वैराग्य ही पर्याप्त नहीं है। वैराग्य को स्वायत्त कर, निरन्तर उसका अभ्यास करते रहने की आवश्यकता है। वैषयिक सुखों से इन्द्रियों

को समेटना तथा उन्हें परमानन्द की ओर उन्मुख करना ही वैराग्य है।

मानवता कोई दूर की चीज नहीं है; वह कोई स्वप्न अथवा कल्पना की वस्तु नहीं है। वह तुम्हारे निकट है, तुम्हारे सामने है और है तुम्हारे चारों ओर। अपने पड़ोसी से ही मानवता का पाठ प्रारम्भ करो।

आज का काम कल पर मत छोड़ो। समय नष्ट मत करो। बीता समय कभी वापस नहीं आता। तुम साधक हो। तुम जहाँ-कहीं भी रहो, किसी स्थिति में भी रहो, अपनी बुद्धि तथा विवेक से काम लो। सभी प्रकार के कार्यों को योग की दृष्टि से, ईश्वरोपासना के भाव से करो। दिव्य जीवन यापन करो। आयु सीमित है, समय गतिशील है। इसी जीवन में भगवद्-साक्षात्कार करना है।

हमें गुरु महाराज ने वह सब-कुछ दिया है, जो मनुष्य को दिव्य जीवन यापन करने के लिए नितान्त आवश्यक है। उनकी तुलना एक मधुमक्खी से की जा सकती है, जो निःस्वार्थ भाव से जीवन-भर निरन्तर सुरभित सुमनों से पराग ले कर संसार को मधु-रूपी अमृत प्रदान करती है। हमारे गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने भी समस्त धर्मग्रन्थों से उपदेशामृत ले कर संसार को अमृतत्व प्राप्त करने तथा आत्म-साक्षात्कार करने का सुअवसर प्रदान किया है। आइए! हम अमृत पान करें और इसी जीवन में मुक्त हो जायें।

समय की गति रुकती नहीं है। वर्ष के बाद वर्ष बीतते चले जाते हैं और एक दिन यह जीवन-लीला ही समाप्त हो जाती है। जो व्यक्ति इस रहस्य को नहीं जान पाता, उसका जीवन व्यर्थ की बातों में ही नष्ट हो जाता है। समझदार व्यक्ति विचार करते हैं कि उन्हें यह मनुष्य-जन्म क्यों मिला है। जीवन का उद्देश्य केवल आत्म-साक्षात्कार करना ही है।

वैदिक-धर्म तथा सनातन-धर्म में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। दोनों के ही प्रमाण तथा आधार वेद हैं। भेद केवल दृष्टि का है, दृष्टिकोण का है। आर्यसमाजी एकमात्र वेदों को प्रामाण्य मानते हैं, जब कि सनातनी पुराणों में भी विश्वास करते हैं। वेद सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं थे; अतः अशिक्षित तथा अर्धशिक्षित जनता को पुराणों का आश्रय लेना पड़ा।

हमारे धर्म का आधार वेद हैं, श्रुति-स्मृति हैं। हमारी संस्कृति की अन्तरात्मा इन्हीं में निहित है; इसलिए हमारा धर्म 'सत्यं, शिवं तथा सुन्दरम्' की उदात्त भावना से सम्पन्न है। परिणाम-स्वरूप इनके विपरीत तत्त्व इनका स्पर्श नहीं कर पाते।

मदिरा-पान की बुरी आदत ने अनेक होनहार नवयुवकों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। शराबी अपने परिवार के लिए अभिशाप बन जाता है। वह अपनी माता के लिए महान् दुःख, पत्नी के लिए हिंसक पशु और बच्चों के लिए लज्जाजनक है। अपने पड़ोसियों के लिए मुसीबत तथा सरकार अथवा व्यक्तिगत मालिक के लिए एक जटिल समस्या है। एक शराबी

समाज के लिए कलंक, मुहल्ले के लिए उपद्रव तथा स्थानीय पुलिस चौकी के लिए सिर-दर्द है। ऐसा व्यक्ति प्रगतिशील देश का योग्य नागरिक कदापि नहीं बन सकता। उसका कार्य सदा अकुशल, उसका चरित्र सदा अविश्वसनीय तथा उसका स्वास्थ्य लाभकारी न सिद्ध हो कर भार ही बना रहेगा। वह हर प्रकार की उन्नति एवं प्रगति में बाधक ही रहेगा।

जीवन का क्या भरोसा! जो साँस अन्दर गयी है, वह बाहर लौटेगी या नहीं-द्वयह ज्ञात नहीं। हमें निरन्तर विचार करना चाहिए कि हम संसार में किसलिए आये हैं और किसने हमें यहाँ भेजा है। विवेक, ज्ञान और बुद्धि का सदुपयोग समय रहते ही कर लेना चाहिए। मनुष्य को यहाँ दिव्य जीवन यापन करने तथा इहलोक और पारलौकिक उत्कृष्ट आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने के लिए ही मानव-जन्म प्राप्त हुआ है।

तुच्छ व्यक्तित्व के साथ एकरूपता का भान ही तुम्हारे लिए बन्धन का सबसे बड़ा कारण है। यही मानव के समस्त असन्तोष, संघर्ष तथा दुःख की जड़ है। यही मानव की भारी भूल है, त्रुटि है। यह मूढ़ता तथा अज्ञानता है। आत्मज्ञान से इस पर विजय प्राप्त करो।

आप जीवन के किसी भी क्षेत्र में क्यों न हों, अपना प्रत्येक कार्य किसी कसौटी द्वारा रूपान्तरित कर लें। कर्म को भजन बना दें। यह मानसिक भावना नीरस-से-नीरस कर्म को भी प्रत्यक्ष प्रभु-पूजा में बदल देगी।

तुम यह नाम और रूप नहीं, वरन् विशुद्ध आत्मा हो। तुम्हारी मूल-प्रकृति सच्चिदानन्द है; किन्तु इसके विपरीत एक भ्रान्त धारणा आत्मिक क्षेत्र में उड़ान भरते हुए मन को नीचे ले जाती है और तुम्हें यह मानने को विवश करती है कि तुम एक सीमित शक्ति के मानव हो। सतर्क रहो, सजग रहो; सात्त्विक विचारों को दृढ़ करो।

अभ्यास और वैराग्य साधना के मूल-मन्त्र हैं। जीवन के अन्त तक साधना में रत रहो। अभ्यास और वैराग्य को सुदृढ़ करो। वैराग्य तुम्हारी साधना को बनाये रखेगा।

वह शक्ति जो हमारे भीतर है और जिसके बिना हमारा यह शरीर केवल जड़, निर्जीव और व्यर्थ है, परमात्मा है।

यदि हम किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहते हैं, तो उसके प्रति पूर्णरूपेण भक्ति आवश्यक है। अधूरे प्रयास कभी भी फलीभूत नहीं होते।

जन्म ले कर जीवन-भर जीवित रहना तभी फलप्रद है जब हम पूजा से, नाम-जप से, भजन-कीर्तन से, उसकी आराधना-उपासना से, धारणा-ध्यान से तथा मन, वचन और कर्म से ईश्वर का स्मरण निरन्तर कर सकें। हमारे अधर-पुट पर प्रति पल, हर क्षण उसी का नाम हो, हमारे मन में सदा उसी का ध्यान हो, हमारे नेत्रों में सदा वह निवास करे और

हमारे कर्ण-कुहरों में सदा उसके नाम की ध्वनि गूँजती रहे। तभी हमारा जीवन सार्थक है।

अनेक स्थानों पर थोड़ा-थोड़ा खोदने से पानी नहीं निकलता। जब हम एक ही स्थान पर अधिकाधिक गहरा खोदते चले जाते हैं, तभी वह कुआँ बन जाता है और उसमें पानी निकल आता है। इसी प्रकार गुरुओं की खोज में इधर-उधर भटकने से क्या लाभ होगा? एक गुरु, एक इष्टदेव, एक इष्टमन्त्र और एक प्रकार की साधना ही भव-सागर को पार करने में सहायक बन सकती है।

विवेकी वह है जो सत्य-मार्ग पर आँख खोल कर चलता है, आँख बन्द करके इधर-उधर भटकता नहीं है।

जिस प्रकार पूजा के पात्रों को हम पूजा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में नहीं लाते, क्योंकि हमने उन्हें ईश्वर की सेवा के निमित्त रख दिया है; इसी प्रकार जिस जिह्वा से हम राम-नाम का उच्चारण करते हैं, भजन-कीर्तन करते हैं, उस जिह्वा से हमें अपशब्द, कटुशब्द आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए; क्रोध, घृणा, अहंकार आदि दुर्गुणों को व्यक्त नहीं करना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे, तो हमारी साधना में त्रुटि आ जायेगी, बाधा उत्पन्न हो जायेगी तथा हमारी प्रगति रुक जायेगी। भगवन्नाम का जो प्रभाव होना चाहिए, जो परिणाम निकलता चाहिए, सात्त्विक गुणों का विकास होना चाहिए वह नहीं होगा।

जहाँ हम पुष्पवाटिका लगाना चाहते हैं, उस धरती से जँगली पेड़, पौधे, झाड़ियाँ आदि उखाड़ फेंकते हैं; धरती को झाड़-बुहार कर स्वच्छ करते हैं, खोद-खोद कर समतल करते हैं, गुड़ाई करते हैं, पानी डालते हैं, खाद देते हैं और तब बीज डाल कर निरन्तर आँधी-तूफान से रक्षा करते हैं। इतने परिश्रम और प्रयास के बाद कहीं वह पुष्पवाटिका रूप लेती है। इसी प्रकार इस जिह्वा से निरन्तर भगवन्नाम लेते हुए, अपशब्दों से बचाते हुए इसे पवित्र रख सकें, तो निश्चित ही एक दिन हम भगवद्-साक्षात्कार कर लेंगे।

जो आचरण ब्रह्म की ओर ले जाता हो अथवा ब्रह्म का ज्ञान कराता हो, वही ब्रह्मचर्य है। मात्र वैषयिक सुखों से दूर करना ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है। मन, वचन तथा कर्महृद्दतीनों से सदाचरण होने पर ही पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन होता है।

माँ की कृपा से ही जागतिक और पारमार्थिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिकहृद्दसभी प्रचेष्टाओं में सफलता और सिद्धि प्राप्त होती है; उनकी दया से ही साधक अपनी साध्य वस्तु को उपलब्ध करने में समर्थ होता है, उनके अनुग्रह से विज्ञासु अपनी जिज्ञासा का समाधान पा लेता है, जीवात्मा पूर्णता को प्राप्त कर भूमा का साक्षात्कार कर पाता है।

इस परिदृश्यमान् जगत्-प्रपंच में जो-कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब परब्रह्म की पराशक्ति अर्थात् आद्याशक्ति की क्रिया मात्र है।

सन्तान के लिए माँ के मध्य में अखिल विश्व की कोमलता, करुणा, स्नेह, पालन तथा पोषण का विषय घनीभूत और केन्द्रीभूत रहता है। यहाँ ही उसका आदर्श जगत् है जहाँ से वह अपनी जीवन-शक्ति प्राप्त करता है। सुख के लिए जिधर भागा जाता है तथा रक्षा और परिपोषण के लिए जिससे सिमटा रहता है, वहीं पर वह अपने सुख, निर्भयता तथा आश्रय की वस्तु को खोज पाता है; कारण सहृदयता, यत्न और निर्भयता की आदर्श-भूमि माँ है।

पृष्ठ २६

योग-साधना की प्रक्रिया द्वारा मनुष्य अपनी अपूर्णताओं, परिमितताओं, संकीर्णताओं, दुर्बलताओं, हीनताओं तथा मानवीय अपवित्रताओं से उन्नत हो कर पूर्ण, शाश्वत तथा दिव्य चेतना में अवस्थिति प्राप्त करता है।

मनुष्य विवेक, ज्ञान तथा विचार आदि उच्चतर क्षमताओं से सम्पन्न एक पशु है। इस भाँति हम देखते हैं कि मनुष्य एक त्रिक है। वह दैवीभावापन्न मनुष्य और पशुभावापन्न मनुष्य के मध्य की अवस्था में रह रहा है। उसमें एक ओर जहाँ पाशविक प्रकृति है, वहीं दूसरी ओर दैवी प्रकृति भी है। इसी से कभी-कभी पशुभावापन्न कार्य करने की इच्छा उसमें होती है और बीच-बीच में भले कार्य करने की प्रवृत्ति भी उसमें प्रकट होती है। कभी आलस्य, काम, क्रोध, हिंसा

प्रभृति भाव दिखायी देते हैं, तो कभी (यद्यपि यह विरल ही क्षणों में हो) करुणा, न्याय, सत्य, पवित्रता प्रभृति उदात्त भाव भी होते हैं।

साधक का प्रथम तथा प्रमुख कार्य है अपनी निम्न प्रकृति के, पशु प्रकृति के, आसुरी प्रकृति के भावों को समूल उत्पाटित करना। इस प्रकार के भावों को पूर्ण रूप से सुसंस्कृत बनाना होगा। इसके अनन्तर दैवी भाव के उन्नयन का कार्य हाथ में लेना होगा। मानवीय भाव को उत्कर्ष के द्वारा दैवी भाव में, उच्च स्तर के ईश्वरीय भाव में ले जाना होगा।

साधक को अपने मन का विश्लेषण करके यह पता लगा लेना होगा कि कौन-सा पशु-भाव उसके अन्दर तीव्र रूप से वर्तमान है। अपनी प्रकृति का यथावत् अध्ययन साधक के लिए नितान्त अपरिहार्य है; क्योंकि जब तक वह यह नहीं जान लेता कि उसमें कौन-सा अवांछित तत्त्व है जो उसकी योग की सफलता में अवरोध उत्पन्न करता है, जो साधना में बाधक है, तब तक योग के इस दुर्गम आन्तर पथ पर सम्यक् रूप से प्रगति करना उसके लिए असम्भव ही है और यह कार्य इसलिए और भी कठिन है कि ये सम्पूर्ण तमोगुण मानव-स्वभाव के अन्तस्तल में बहुत ही कम स्पष्ट रूप से प्रकट तथा दृष्टिगत होते हैं। आपके लिए अपने बाह्य शत्रुओं का सामना करना इसकी अपेक्षा कहीं सरल है; क्योंकि आप अपने इन शत्रुओं से परिचित होते हैं, इनके स्वभाव तथा सामर्थ्य से आप अनभिज्ञ नहीं होते; अतः आप इनके स्तर पर ही इनसे लोहा ले सकते हैं। काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा प्रभृति मनुष्य के अन्तर के शत्रु नाना छद्म रूप

धारण करते हैं और दृष्टि से अगोचर ही रहते हैं। यदि साधक सहायता के लिए प्रार्थना के द्वारा अन्तर्यामी, जो हमारे हृदय के मध्य में अवस्थित हैं, की कृपा प्राप्त नहीं कर लेता तो इस नीच, स्वार्थपूर्ण, अहंकारपूर्ण स्वभाव को नष्ट करने की इस प्रक्रिया में प्रगति करना उसके लिए दुष्कर ही होगा।

अपने से भिन्न व्यक्ति का विश्लेषण करना सहज होता है, क्योंकि उसका बाह्याचरण हमारे दृष्टि-पथ के भीतर हुआ करता है; किन्तु आत्म-विश्लेषण करना अतीव दुरूह कार्य है। इसका कारण यह है कि मानव-मन स्वभावतः बहिर्मुखी हुआ करता है। यह बाहर के जागतिक पदार्थों की ओर सदा भागा फिरता है। अतः इसे अन्तर्मुखी करने की आवश्यकता है जो एक दुस्साध्य कार्य है।

मनुष्य को उसका अहंकार उसे अपने निज के दोष देखने, अपनी त्रुटि को खोजने अथवा जो उसे तृप्तिकारक नहीं है, उसको जानने से बलात् पराङ्मुख कर देता है। यह एक सामान्य अनुभव है जो हमारे अहंकार के लिए सुखप्रद नहीं होता, वह विषय सदा ही हमारी दृष्टि से बाहर रहता है।

अपना विश्लेषण स्वयं अपने-आप करना अतीव दुरूह है। प्राच्य आध्यात्मिक जीवन-विधा में जो साधकों को स्वयं को गुरु के प्रति अनन्य-भाव से आत्म-समर्पण की व्यवस्था है, वह भी इसका एक कारण है। साधक गुरु के निकट जा कर, गुरु को आत्म-समर्पण कर उनके सान्निध्य में निवास करता है। ऐसा करने पर उसके वे सम्पूर्ण दोष तथा अवांछित

दुर्गुण, जिन्हे वह अपनी चेष्टा से देख नहीं सकता अथवा अपने अन्तरावलोकन से पकड़ नहीं पाता, गुरु के नेत्रों से सहज ही पकड़ में आ जाते हैं। तब गुरु साधक को इस रीति से चलाते हैं जिससे वह सहज ही इन सब दोषों से मुक्त हो जाता है, अथवा वे उसे इस प्रकार के कार्य करने को देते हैं जिससे इन दोषों का निःशेष उन्मूलन अवश्यम्भावी हो जाता है। कभी-कभी वे विशेष उपदेश भी देते हैं और आवश्यकता होने पर वे उन गुप्त दोषोद्भवजो साधक की दृष्टि की पकड़ में नहीं आते; किन्तु गुरु से अगोचर नहीं हैं हृदयका तिरस्कार अथवा भर्त्सना द्वारा उन्मूलन सहज बना देते हैं।

अपने दोषों की विद्यमानता की अज्ञानता इस (योग-पथ) का प्रथम अन्तराय है; किन्तु अपने दोषों से अवगत होना मात्र ही पर्याप्त नहीं है। उनके नाश की चेष्टा न करने से वे दोष चिर काल तक बने रहते हैं। तदनन्तर दूसरा पग है तीव्र मानसिक इच्छा-शक्ति तथा फलवती चेष्टा द्वारा अपनी इन हीन प्रवृत्तियों को नष्ट करना।

उग्र तपस्या करने के लिए प्रथम तितिक्षा की वृद्धि करनी होती है अर्थात् अपने मन की निम्न प्रकृति के लिए क्लेशप्रद तथा अप्रीतिकर अवस्था को सहन करने की क्षमता का विकास करना होता है। तितिक्षा के अनेक रूप हैं हृदयथा उपवास, निद्रा-त्याग आदि। मन जिन पदार्थों को अधिक पसन्द करता हो, उनका कुछ समय के लिए त्यागहृदयथा लवण-शून्य आहार, शर्करा-रहित चाय, पादुका-त्याग आदि इसी श्रेणी में आते हैं। जिन उपायों द्वारा हम अपने

स्वाभाविक निम्नगामी मन की इच्छाओं का प्रतिकार कर सकें तथा हमें विषय-जगत् के भोगों की दिशा की ओर ले जाने वाली ऐन्द्रिक भोग-वासनाओं का नियन्त्रण कर सकें, उन्हें प्रत्येक साधक को चिन्तन द्वारा स्वयं निश्चित करना चाहिए और इस भाँति साधना का एक पूर्ण कार्यक्रम निर्धारित कर लेना चाहिए।

साधक को शरीर की मौलिक आवश्यकताओं को न तो टालना चाहिए और उनकी उपेक्षा ही करनी चाहिए। यदि वह वेदान्त की विचारधारा में उड़ानें भरता है, अपने भौतिक शरीर की उपेक्षा करता है, उसे स्वस्थ बनाये रखने की चिन्ता नहीं करता एवं उसे यथोचित विश्राम तथा पोषण नहीं देता और सोचता है कि वह आत्मिक चेतना प्राप्त कर चुका है, तब जगने पर उसे अत्यधिक विलम्ब से अपनी भूल का पता चलता है। तब उसे ज्ञात होता है कि व्यक्ति को बहुवांछित अन्तःकरण तथा आचरण की शुद्धता की प्राप्ति के लिए अत्यावश्यक निष्काम सेवा जिसके द्वारा करनी होती है, योग-साधना के उस सर्वोत्तम उपकरण को, इस भौतिक शरीर को इतनी लम्बी क्षति पहुँच चुकी है कि उसका प्रतिसंस्कार नहीं हो सकता। उसकी योग-साधना की प्रगति में गम्भीर अवरोध आ जाता है।

भूखों तथा अभावग्रस्त लोगों को धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती; क्योंकि मनुष्य जब क्षुधा से पीड़ित हो, तो उस समय उसमें उच्च आदर्शों का कोई विचार नहीं उठ सकता।

प्रत्येक हिन्दू-हृदय में नारी-जाति को मातृ-रूप में चिन्तन करने की रीति है। यह भाव स्वतः ही प्रत्येक हिन्दू के हृदय में जागरूक रहता है। इस पुण्यभूमि भारत में जन्म ग्रहण करने का यही लाभ है।

जहाँ देव-देवियों की पूजा नहीं होती, वहाँ लक्ष्मी का निवास नहीं होता।

देव-पूजा प्रत्येक गृहस्थ का एक आवश्यक कर्तव्य है। परम्परा से चले आये व्रत और उत्सवों को मनाना गार्हस्थ्य जीवन का एक प्रमुख अंग होना चाहिए; क्योंकि पुण्यभूमि भारत में मनाया जाने वाले जन्माष्टमी, रामनवमी आदि पर्व-दिनों की उपेक्षा की गयी, तो हम कहते हैं कि इस घर में अमंगल है।

गृहस्थ के पास जो-कुछ है, उसमें अन्य तीन आश्रमों के लोगों को अपना सहभागी बनाने का उसे एक अनुपम अवसर प्राप्त है। अन्य तीन आश्रमियों को दान देना द्वितीय आश्रमी का एक विरल सौभाग्य है।

जिस समय हम भोजन के लिए बैठें, उस समय हमें क्रोध नहीं करना चाहिए। भोजन-काल में परुष वाणी नहीं बोलनी चाहिए। भोजन अस्वीकार करना एक महान् भूल है; क्योंकि यह इस धरती पर प्राण-पोषण-कर्तृ भगवती के प्रकट रूप का साक्षात् तिरस्कार और अवहेलना है।

एक धार्मिक हिन्दू के जीवन की सर्वाधिक अर्थवत्ता इसमें है कि उसने जीवन को, अपने विकास-क्रम को शीघ्र पूर्ण कर मानव-जीवन के लक्ष्य अर्थात् आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त करने का एक सुअवसर प्रदान किया है।

साधक को ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि लौकिक प्रवृत्तियों में पड़ कर वह पतित हो चला है अथवा आध्यात्मिक सत्य से बहुत दूर जा पड़ा है और न उसे इस कारण पश्चात्तापपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए कि उसे साधना के लिए सुअवसर उपलब्ध नहीं हो सका। इसके विपरीत उसे अपने सभी कर्म उल्लासपूर्ण भावना से, उत्साह की भावना से और उदात्त भावना से सम्पादित करने चाहिए; क्योंकि उसे यह जानना चाहिए कि सभी कुछ मातृ-पूजा है।

साधकों को सभी कर्म देव-प्रेरित उपासना की भावना से करने चाहिए। ऐसा करने से वे देखेंगे कि इसके लिए व्यक्ति को न तो अपने व्यवसाय अथवा स्थान-परिवर्तन की आवश्यकता होती है और न परम्परागत निवृत्ति-पथ का एकान्तिक जीवन-यापन करने के लिए वन में पलायन करने की ही। यदि एकान्त और ध्यानमय जीवन का अवसर प्राप्त होता है, तो अच्छा ही है; किन्तु जैसा कि अधिकांश लोगों के साथ होता है, यह सम्भव न हो सके, तो इसमें खेद का कोई कारण नहीं; क्योंकि यदि एक बार सम्यक् भाव अपनाया गया, विषय-पदार्थों के प्रति उचित दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया गया, तो अप्रत्यक्ष रूप से सब-कुछ योग बन जाता है और सब-कुछ आध्यात्मिक साधना का रूप ले लेता है।

हम सुचिर काल से विपथगामी हो चुके हैं, इसका अनुभव तथा सच्चिदानन्द के अपने मूल-धाम की पुनर्प्राप्ति की एक बार पुनः उत्कट आकांक्षा ही इस आध्यात्मिक खोज का पूर्ण उद्देश्य तथा प्रतिक्रिया है। यही आध्यात्मिक जीवन है और यही साधना-पथ है।

स्वाध्याय दैनिक साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जैसे तो आध्यात्मिक साधक के लिए इसकी महत्ता अनेकविध है; किन्तु साधना-क्षेत्र में इसकी कम-से-कम एक अतीव महत्त्वपूर्ण भूमिका यह है कि यह साधकों के विचारों और भावों में सत्त्व तथा आध्यात्मिक गुणों को विकसित करने में सहायक होता है।

सन्त-चरित्र, गीता, भागवत, रामायण, बाइबिल, कुरान, जेन्द आवेस्ता, धम्मपद जैसे धार्मिक ग्रन्थों के रूप में माँ सरस्वती के सम्पर्क द्वारा साधक की प्रकृति को विचारों के रूप में आध्यात्मिक तथा सात्त्विक आहार का दैनिक पोषण प्राप्त हो सकता है।

ध्यान-काल में मन में सशक्त अस्त्यात्मक आध्यात्मिक विचारों के कुलक का सर्जन धारणा तथा ध्यान के अभ्यास के समय साधक की सहायता करता है। ऐसा देखा गया है कि साधक जब भी ध्यान करने का प्रयास करता है, तो उसका मन भ्रमण करने लगता है। ध्यान की प्रारम्भिक अवस्थाओं में यह भ्रमणशीलता बहुत सशक्त होती है। यह सम्पूर्ण

प्रक्रिया नीचोपरिग तथा विरुद्धाकर्षण का रूप ले लेती है। मन को लक्ष्य पर लाते हैं, पर वह विचार में संलग्न हो जाता है। यहाँ एक अवांछनीय बात यह होती है कि जब मन विचरण करता है, तो विचारों का वह क्षेत्र, जिसमें यह विचरण करता है, वह सब वैषयिक, स्थूल तथा सांसारिक होता है। मन की इस भ्रमणशीलता पर क्रमिक अभ्यास तथा वैराग्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता।

वाक्-रूप में अभिव्यक्त माता की ऊर्जा का जब संरक्षण किया जाता है, तो वह प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की यौगिक क्रियाओं में निसूत्रण तथा उपयोग के लिए साधक की एक परिसम्पत् बन जाती है तथा मौन-साधना में एवं उसके द्वारा संरक्षित वाक्-शक्ति, विचार तथा आत्म-विश्लेषण करने में भी बहुत ही मूल्यवान् सिद्ध होती है।

सत्य-पालन की प्रतिज्ञा द्वारा वाणी की शुचिता बनाये रखने का गुण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। सत्यशीलता जैसे महान् गुण की गरिमा अवर्णनीय है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यदि साधक में सत्यशीलता नहीं है, तो उसका सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन ही निरर्थक है, शून्य है। जब तक व्यक्ति यथाशक्ति प्राणपन से सत्य पर सर्वथा स्थिर रहने का प्रयास नहीं करता, तब तक उसमें रंचमात्र भी वास्तविक, सारभूत तथा स्थायी आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो सकती।

मनुष्य या तो सत्यवादी होता है अथवा असत्यवादी। यह एक वास्तविकता है कि साधक जब तक पूर्णरूपेण सत्यशील नहीं होता, तब तक उसकी आध्यात्मिक प्रगति मात्र एक दुराशा, एक दिवास्वप्न ही है, जो कभी भी साकार नहीं हो सकती। यदि साधक अपनी खोज में सच्चा है, यदि उसमें इस मरणशील भौतिक शरीर की; दुःख, शोक, रोग और अन्ततः मृत्यु से पूर्ण इस पार्थिव जीवन की शृंखला को येन-केन-प्रकारेण ध्वस्त करने की सच्ची ज्वलन्त आकांक्षा है, यदि उसमें अपने को मुक्त करने तथा शाश्वत आनन्द के उपभोग की लालसा है, तो उसे सत्य का दृढ़ उपासक बनना आवश्यक है।

सत्य ही महानतम योग है। इस कलियुग में यही महानतम तप तथा संयम है। जिस मनुष्य के पास सत्य है, उसके पास ईश्वर है। आइए, हम इस पर ध्यान करें, इसका मनन और चिन्तन करें, निदिध्यासन करें। हम अपने विचार, वाणी और कर्म में शनैः-शनैः सत्य की परमपूर्णता के निकट से निकटतर पहुँचने के प्रत्येक सम्भव उपाय द्वारा सदा प्रयत्न करें।

आध्यात्मिक साधक अथवा जिज्ञासु को वाणी की इस महान् शक्ति के उपयोग के विषय में सदा सावधान रहना चाहिए। उसे यह संकल्प लेना चाहिए कि वह कभी भूल कर भी प्रभु के क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी को भी कठोर वचन द्वारा आघात नहीं पहुँचायेगा। मनुष्य को मधुरभाषी होना चाहिए। यदि कभी ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित हो जाये, जब मृदु भाषण सहज सम्भव न हो, तो ऐसे समय में उसे मौन रह जाना ही श्रेयस्कर होगा।

आध्यात्मिक साधना तथा सद्बस्तु की आध्यात्मिक खोजपूर्ण जीवन से वृथा बकवाद का पूर्णतया बहिष्कार कर देना चाहिए। व्यर्थ का बकवाद भगवती माँ का अपमान है; क्योंकि वह वाक् की प्रबल शक्ति के रूप में हम सभी में अभिव्यक्त होती हैं।

हमारे आर्ष ग्रन्थों ने हमें लक्ष्य और आदर्श दे रखा है। हमारा लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है। गीता का त्याग, भागवत की भक्ति, महाभारत का धर्म तथा रामायण का आदर्श जीवन ही उस लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।

चिन्मयी माँ ब्रह्म की ही अलौकिक अव्यक्त शक्ति हैं। ब्रह्म असीम, अनन्त तथा अवर्णनीय शान्ति है, वह इन्द्रिय और मन से अप्राप्य है। माँ उसी परब्रह्म का गतिशील रूप हैं।

मानव-मन एक आश्चर्यमयी माता द्वारा आबद्ध है, जिससे उसकी विशुद्ध विचार-शक्ति तमसावृत हो रही है। इससे ही उसका मन पुनः-पुनः सब प्रकार के दुःख तथा यन्त्रणा के कारण-रूप सम्पूर्ण वस्तु और व्यक्ति में आसक्त हो कर बार-बार उनमें ही विचरण करता है।

महामाया भगवान् की विश्वव्यापी विमोहिनी शक्ति है, जो भगवान् से ही उद्भूत है। इसी शक्ति के द्वारा भगवान् अपने जगत्-नाटक के सब नाम-रूपों

की सृष्टि, स्थिति और प्रलय कर पुनः अपने शुद्ध परात्पर रूप में अन्तर्लीन कर लेते हैं।

जिस शक्ति का द्वारा कार्य कारण-रूप में प्रविष्ट होता है एवं कारण और कार्य संयुक्त रहते हैं, वही माया, अलीक प्रपंच अथवा देवी है।

इस विश्व में स्थूलतम से ले कर सूक्ष्मतम तक तथा क्षुद्रतम से ले कर वृद्धतम तक जो-कुछ भी वर्तमान है, वह सब ही महामाया अथवा परब्रह्म की अलौकिक शक्ति का प्रकाश है, विलास है। यह पराशक्ति ही सब नाम-रूपों में प्रकाशित है, सम्पूर्ण प्रकाशों का मूल और व्यक्त का आदि है। माँ के कारण ही यह व्यक्त भाव सम्भव हो सका है।

परब्रह्म की मातृ-रूप में भावना करने का कारण सहज ही जाना जा सकता है। कारण, इस संसार में जन्म ग्रहण करने वाले प्रत्येक प्राणी का प्रथम ज्ञान उसकी माँ-सम्बन्धी ही होता है। जीव को जो अपने प्रारम्भिक जीवन की सर्वप्रथम स्मृति यदि कुछ हो सकती है, तो वह है अपनी माँ के अंक में शयन करते हुए उसके वात्सल्यपूर्ण नेत्रों की ओर एकटक देखते रहने की।

वह (माँ) जिस प्रकार से सर्वशक्तिमान् हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण शक्तियाँ उनकी क्रीड़ा हैं। इस कारण कर्मठ ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी आदिशक्ति-रूपी माँ की ही मूर्ति हैं। वही सरस्वती-मूर्ति से ब्रह्म-शक्ति के रूप में, लक्ष्मी-मूर्ति से विष्णु-शक्ति के रूप में

और पार्वती-मूर्ति से शिव-शक्ति के रूप में प्रकट हुई हैं।

माँ उद्धार के लिए ही विनाश करती हैं। ज्ञान-दान के लिए वह अज्ञानता और मोह नष्ट करती हैं। वह हमारा अन्धकार नष्ट करती हैं, जिससे हम प्रकाश प्राप्त कर सकें। वह सम्पूर्ण दुःख, शोक, दुर्दशा और समस्त भौतिक क्लेश तथा ताप नष्ट कर हमें आनन्द, सुख और अमृतत्व प्रदान करती हैं। इस भाँति जो-कुछ भी जीव को इस दुस्तर संसार से आबद्ध करने वाला है, उसे वह नष्ट कर डालती हैं।

संसारी जन जिस वस्तु की ओर ध्यान देते हैं, योगी जन उससे उदासीन रहते हैं और उसकी ओर ध्यान नहीं देते। संसारी जन जिसे देख नहीं पाते, उसे योगी जन अपने आध्यात्मिक जागरण की अवस्था में, उन्मीलन-काल में देख लेते हैं।

यह ध्यान रखना होगा कि भागवतीय शक्ति की मातृ-रूप में उपासना की परिकल्पना दो प्रकार से की गयी है—विद्या-माया तथा दूसरी अविद्या-माया। विद्या-माया-रूप में लक्ष्मी साधक की आध्यात्मिक ऊर्ध्वगति को, उसके योग और उसकी साधना को अवलम्बन देती है, पोषण प्रदान करती तथा उसका परिरक्षण और परित्राण करती हैं।

हम देखते हैं कि जहाँ लक्ष्मी-पूजन नहीं किया जाता, वहाँ की जनता का सुख क्षय हो जाता है।

उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा उस राष्ट्र की समृद्धि पलायन कर जाती है।

एक हिन्दू का गृह लक्ष्मी का आलय है। इसी से हिन्दू-समाज में प्रत्येक गृह ही मांगल्य व श्री का मन्दिर है, गृहलक्ष्मी-रूपा लक्ष्मी का आवास-स्थल है। माँ लक्ष्मी की, जो महानता, शक्ति और विभा गृहलक्ष्मी में उसके यश, महिमा तथा अन्तर्ज्योति के रूप में साकार होती है, वह उस (गृहलक्ष्मी) के सतीत्व, पातिव्रत्य की ही आभा है। गृहलक्ष्मी के लिए यह (पातिव्रत्य की) शक्ति विश्व-भर में अद्वितीय है।

हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि हिन्दू-आदर्श में शील की रक्षा एक महत् गुण है एवं ऐसी (शीलवती) नारी के मध्य में माँ भव्य भारतीय नारीत्व के रूप में स्वयं आविर्भूत होती हैं।

माँ लक्ष्मी साधक तथा जिज्ञासु के अन्तःकरण में यदृच्छ गुरु-भक्ति तथा उसकी सहगामी अनन्य भाव से गुरु-सेवा के रूप में अपने को अभिव्यक्त करती हैं।

व्यक्ति चाहे पारिवारिक क्षेत्र में हो अथवा साधनामय जीवन के क्षेत्र में, उसे सदा यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जहाँ भी लक्ष्मी की अवज्ञा की जाती है, वहाँ वह निवास नहीं करती।

अन्न माँ लक्ष्मी का स्वरूप है। इसका अपचय तथा अनावश्यक अपव्यय कदापि नहीं करना चाहिए। इसके अपव्यय का अर्थ हैद्वहमाँ भगवती के इस विशेष रूप के गुण तथा महत्त्व का सही मूल्यांकन न कर सकना।

हमें माँ सरस्वती से प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें आशीर्वाद दें तथा अपने विद्या-स्वरूप के दिव्य गुणों के साथ हमारे गृह तथा हृदय, दोनों को सुशोभित करें और हम इन दोनों स्थानों में उनकी उपस्थिति का पूर्णतम लाभ उठा सकें।

माँ सरस्वती में ही इस निखिल विश्व-नाटक की पूर्णता दृष्टिगोचर होती है। वैसे तो माँ की अद्वितीय परब्रह्म तथा चिन्मयहृद्दइन द्विविध रूपों में पूजा की जाती है; पर जिज्ञासु तथा योगी के लिए कैवल्यमोक्ष-प्रदायक पराज्ञानदायिनी के रूप में उनकी विशेष महत्ता तथा अर्थवत्ता है।

जीव के अन्तःकरण में महासरस्वती के रूप में माँ के आविर्भाव मात्र से ही उसका अज्ञानान्धकार अचिरात् समूल विनष्ट हो जाता है, जड़त्व का अन्त हो जाता है, मृत्यु की भी मृत्यु हो जाती है तथा 'पुनरपि जननं, पुनरपि मरणम्' के समस्त प्रवाह का निरोध हो जाता है।

सभी वैज्ञानिक अनुसन्धान, अन्वेषण, आविष्कार तथा इस प्रकार के आविष्कारों पर

आधारित विविध उपकरणों का निर्माण महासरस्वती की अपरोक्ष अभिव्यक्तियाँ ही हैं।

हमें अपने सभी कार्यों के प्रति ऐसी श्रद्धा तथा प्रगाढ़ भाव के साथ उपगमन करना तथा उनमें संलग्न होना चाहिए मानो वे पराशक्ति की विशुद्ध पूजा ही हैं। इस प्रकार ही हम अपने व्यावहारिक कार्यों को अपने आध्यात्मिक जीवन के उत्थान के लिए उपयोग कर सकेंगे।

हमें मानव-जन्म ग्रहण करने का तथा माँ के यशोगान के लिए कार्य तथा चेष्टा करने की क्षमता रखने का जो वरदान प्राप्त है, उसके लिए हर्षित होना चाहिए।

जब जीव माँ के इस आह्वान को सुनता है, तब वह विश्व-क्रीड़ा से विरत हो उसकी ओर अपनी पीठ कर माँ के मुख की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगता है और तब परमा माँ अपने असीम करुणापूर्ण नेत्रों को एक क्षण के लिए उन्मीलित करती है, जिससे उनकी दिव्य कृपा-रश्मि सन्तान के ऊपर पड़ती है और उसे आप्लावित कर उसकी सम्पूर्ण क्लान्ति, दुःख तथा विश्व-क्रीड़ा-जन्य समस्त अवसाद से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त कर उसे आध्यात्मिक आनन्द की सूक्ष्म ऊँचाइयों में उठा लेती है।

सत्त्व के रूप में माँ सरस्वती साधक के हृदय में आविर्भूत होती हैं। जब उनकी कृपा साधक पर उदय होती है, तो उसका समस्त जीवन रूपान्तरित हो जाता

है तथा साधक में अवस्थित सब प्रकार के तामसिक और आसुरी भाव शनैः-शनैः किन्तु निश्चित रूप से अन्तर्हित हो जाते हैं।

दीक्षा-काल में गुरु से प्राप्त गुरु-मन्त्र के रूप में माँ प्रकाशित होती हैं। यदि व्यक्ति सद्गुरु से प्राप्त मातृ-रूप मन्त्र की अवज्ञा अथवा अवहेलना करता है, उसके जप में उत्साह नहीं रखता, तो यह माँ सरस्वती की पूजा में तथा उन्हें यथोचित मान देने में उसकी त्रुटि समझी जायेगी।

जिस व्यक्ति-विशेष के प्रति किसी विशेष आध्यात्मिक वर्ग के साधकों ने स्वयं को आत्म-समर्पित कर दिया है तथा जिसे उन्होंने अपने हृदय-प्रकोष्ठ में अपना गुरु स्वीकार कर लिया है, ऐसा व्यक्ति उन साधकों के लिए पराशक्ति का साक्षात् साकार रूप है। वह उनके लिए ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है और स्वयं अक्षर परब्रह्म है।

हमारे सम्मुख स्थित इस अखिल विश्व के पीछे एक शाश्वत सत्ता है। इस जगत्, जिससे हम परिचित हैं, के संघटक तत्त्व नाम और रूप के पीछे एक प्राणभूत जीवन्त सद्-वस्तु है। उस महान् सत्ता का, उस जीवन्त सद्-वस्तु का स्वरूप आनन्दमय तथा सुखमय है। यह अबाध स्वातन्त्र्य असीम शान्ति, अपरिमित ज्ञान तथा अनिर्वचनीय आनन्द की स्थिति है। यह वह सुख है, जिसकी इस भूलोक के किसी पदार्थ से किंचिन्मात्र भी समता नहीं हो सकती। यह आनन्द, स्वातन्त्र्य, शान्ति और सुख आपकी शाश्वत

अवस्था है। वह आपका वास्तविक धाम है। वही आपकी अन्तिम नियति है।

यहाँ दो बातें जो अवश्य ज्ञातव्य हैं, उनमें एक यह है कि व्यक्ति को यह शरीर, मन तथा समस्त बौद्धिक क्षमताएँ एक उपकरण के रूप में प्रदान की गयी हैं; परन्तु वह अपने सामान्य जीवन में अपने भौतिक शरीर तथा इन्द्रियों के इंगित पर नाचता रहता है। वह अपने को उनसे पृथक् नहीं समझता। दूसरी बात जानने की यह है कि मनुष्य अपने को मन की कामनाओं और वासनाओं में उलझा हुआ पाता है; किन्तु अपने को इन्द्रियों का अनुचर तथा मन की कामनाओं और वासनाओं का दास समझना खेदजनक भ्रान्ति है। इसके साथ ही यह भी मानना एक त्रुटि ही है कि उपकरण एकमात्र ऐन्द्रिक सुख तथा वैषयिक भोगों के अनन्त चक्र में संलग्न होने के लिए ही प्रदान किये गये हैं।

मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी तथा समाज का एक सदस्य होने के नाते ऋषियों के महान् उपदेशों में सच्चे परिश्रम से जीवन यापन करने का परामर्श दिया गया है। उसका यह श्रम जीवन मात्र की निःस्वार्थ सेवा का एक अतिरिक्त रूप भी ले सकता है।

जिस प्रकार बाह्य जीवन में आचार का अनुसरण आवश्यक है, उसी प्रकार आन्तरिक जीवन में सम्यक् विचार का अभिभावी होना भी आवश्यक है। जो विचार इन्द्रियों के खिंचाव से प्रभावित होते हैं, वे असम्यक् हैं। जो विचार सदाचरण के सिद्धान्तों के अनुगामी होते हैं, वे सम्यक् हैं।

समस्त कार्यों के पीछे एक पूर्ण विशुद्ध उद्देश्य होना चाहिए। विचार तथा उद्देश्यद्वन्द्वों सदा ही अभिजात, उन्नत तथा विशुद्ध होने चाहिए।

क्रोध अग्नि है, जिसमें यदि आहुति डालें तो वह अधिकाधिक प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित होती है। सन्तोषी व्यक्ति सदा सावधान रहता है और लोभपूर्ण विचारों को पहचानता है; अतः उन्हें अपने मन में ही कुचल डालता है।

श्रुति कहती है : 'द्वितीयाद्वै भयं भवति।' द्वैत से भीति, महाभीति उत्पन्न होती है। सत् अद्वय है, द्वैत-रहित है। इससे सुख प्रकट होता है।

मनुष्य स्वरूपतः दिव्य हैद्वन्द्वइस तथ्य की मान्यता ही मानव-एकता का सुनिश्चित आधार है। इस सत्य को स्वीकार कर नाम और रूप की सीमाओं से परे हो जायें, उसका अतिक्रमण कर जायें। ऊपरी धरातल पर घटित होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान न दें। सदा जागरूक रहेंद्वन्द्व'में अपने स्वरूप आत्मा में सभी प्राणियों के साथ एक हूँ। मैं शुद्ध ज्योति, शुद्ध सत्ता रूप अपनी सारभूत सत्ता में सभी प्राणियों के साथ एक हूँ। सत्ता एक है। जीवन एक है।'

सन्तों का पथ भगवान् में विश्वास पर आधारित है, जीवन की पवित्रता पर आधारित होता है। किसी भी देश अथवा जाति के किसी भी सन्त का जीवन

देखें, तो पायेंगे कि उन्होंने अपने वैयक्तिक उदाहरण तथा आदर्श में जो पथ हमें दर्शाया है, वह एक ही है।

हो सकता है कि एक सन्त सर्वसम्पन्न हो, पर भाव-जगत् में वह अनुभव करता है कि वह भगवान् की चरण-रज का एक कण मात्र है। 'भगवान् ही सर्वस्व हैं। मैं नगण्य हूँ। हे प्रभो, तू ही सर्वस्व है।' यह सभी पवित्र आत्माओं की अभिव्यक्ति होती है। यह निःशेष अहंकार-राहित्य और तत्परिणामजन्य विनम्रता भी सभी सन्तों के सार्वलौकिक लक्षण हैं।

आपके जीवन में कैसी ही घटना क्यों न घटे, ईश्वर के प्रति आप अपनी आस्था बनाये रखें। इससे आप शाश्वत जीवन तथा अपरिमित आनन्द से पुरस्कृत होंगे।

आपदाओं के आने पर हम अपने अन्तर्वासी प्रभु पर विश्वास न कर अपने धन तथा अन्य बाह्य साधनाओं पर अधिक विश्वास रखते हैं। भागवतीय सत्ता की उपस्थिति की भावना हममें नहीं रहती। सन्त यद्यपि अपने जीवन-काल में बाह्य जगत् में रहते थे; किन्तु वे सदा ही प्रभु के साथ अपना निकट-सम्पर्क बनाये रखते थे और यही कारण है कि वे भागवत-पुरुष माने जाते थे।

हमें सदा सन्तों का स्मरण करना चाहिए। सन्तों के क्षण मात्र के अनुचिन्तन से ही हमारा हृदय तत्काल निष्कल्मष हो जाता है, हमारी प्रकृति पवित्र हो जाती है, हम दैवी प्रेरणा से आपूरित हो जाते हैं और उन्नत

स्थिति में पहुँच जाते हैं; क्योंकि उनके जीवन में अलौकिक शक्ति होती है। उन्होंने अपने को पूर्ण रूप से रिक्त कर दिया था, दिव्य आत्मा ने उन्हें आपूरित कर दिया।

मन पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने में प्रयत्नशील सच्चे जिज्ञासु को यह नियम कभी भी विस्मरण नहीं करना चाहिए कि जो विचार अधिकाधिक पुनरावृत्ति द्वारा धारण किया जाता है, वह मन की सहज वृत्ति का एक अंग बन जाता है।

राजयोगी के लिए प्रत्याहार, भक्त के लिए स्मरण तथा उपासना-भाव तथा वेदान्ती के लिए ब्रह्म-चिन्तन ऐसी प्रक्रियाएँ हैं, जिनसे मन की विचार-प्रणाली रूपान्तरित हो जाती है। मन में एक नवीन विचार-प्रणाली का प्रादुर्भाव होता है तथा मनुष्य सांसारिक विचार-प्रणाली के स्थान में दिव्य विचार-प्रणाली प्राप्त करता है।

हम साधना के हेतु ही इस पार्थिव जगत् में आये हैं। इस भूलोक में ही साधना की जा सकती है और इसीलिए यह लोक साधना-भूमि कहलाता है।

साधना के द्वारा आत्म-साक्षात्कार होता है। अब प्रश्न उठता है कि साधना है क्या वस्तु? साधना का अर्थ है हृदयसम्यक् जीवन, ईश्वरोन्मुखी जीवन-यापन, ऐसा जीवन-यापन जिसमें अपने सत्स्वरूप को अभिव्यक्त तथा प्रव्यक्त करना आरम्भ किया जाता है। आप नित्य, शुद्ध तथा निरंजन हैं।

आप अपने दैनिक जीवन में अपने इसी नित्य, शुद्ध तथा निष्कल्मष स्वभाव को अपने विचार तथा वाणी में, अपनी कामनाओं की प्रतिकृति में तथा अपने आन्तरिक उद्देश्य में प्रव्यक्त करें। इसका अभ्यास करें। इसको अपने जीवन में चरितार्थ करें। इसे विकीर्ण करें। यही साधना है।

आप सत्य हैं, परम सत् हैं। इस सत्य को प्रव्यक्त करें। अपने हृदय से असत् का उन्मूलन कर डालें। सत्य के साकार रूप बनें। अपने सत्स्वरूप में स्थित रहें। आपका जीवन आपके सत्स्वरूप का व्याघात न बने, यही सारभूत साधना है।

दिव्य जीवन यापन ही सर्वोपरि साधना है। इस (दिव्य जीवन) में प्रत्येक क्रिया, विचार एवं वाणी दिव्य गुणों से परिव्याप्त होती है।

यदि आप पर्वत के शिखर पर पहुँचना चाहते हैं, तो आपको ऊर्ध्वारोहण करना ही होगा और जब आप एक बार शीर्ष-स्थल पर पहुँच गये, तो आरोहण का वह सभी श्रम केवल बाल-क्रीड़ा सा प्रतीत होगा; किन्तु शिखर तक पहुँचने से पूर्व आपमें एक-एक पग पर श्रमपूर्वक ऊपर चढ़ने की क्षमता होनी चाहिए।

आपको अपने हृदयोद्धान में दैवी सद्गुणों के पुष्प विकसित करने चाहिए। व्यक्ति सदाचारिता से उन्नत हो कर पवित्रता तक, पवित्रता से उन्नत हो कर दिव्यता तक और दिव्यता से उन्नत हो कर ईश्वरानुभूति तक पहुँचता है। व्यक्ति अशुद्धता से

शुद्धता तक, शुद्धता से पवित्रता तक और पवित्रता से उच्च आध्यात्मिक अनुभूति तक उन्नत होता है।

योग का अर्थ हैद्वहससीम आत्मा का असीम आत्मा से मिलन। जीव की एकदेशीय (स्थान-परिच्छिन्न) चेतना का परमात्मा में विलय ही योग है।

आन्तरिक परिस्थितियों के दोषपूर्ण होने की स्थिति में कोई भी आध्यात्मिक अनुभूति सम्भव नहीं है। यदि नैतिक गुणों को व्यक्ति की सत्ता के गम्भीर तल में रोपण न किया गया तो, धर्माचरण अथवा सच्चा आन्तरिक जीवन यापन सम्भव न होगा।

एक सामष्टिक सत्ता का, एक देश में संगृहीत सत्ता का, एकीकृत पूर्ण सत्ता का एक स्व-निर्दिष्ट दिशा में तैलधारावत् निरन्तर प्रवहणशील सफल गति का नाम ध्यान है।

सदाचार एक आध्यात्मिक गुण है। इन आध्यात्मिक गुणों पर इतना अधिक बल क्यों दिया जाता है, इसका कारण सहज ही समझा जा सकता है। यह इसलिए कि ये परिष्कृत गुण हैं जो दिव्यानुभूति की प्रत्यक्ष अर्थ-वैपरीत्य शक्तियों को ध्यान तथा आध्यात्मिक अनुभूति की दशा के प्रत्यक्ष विरोधी कारकों को मनुष्य की प्रकृति से बाहर रखते हैं।

जिस व्यक्ति ने आगे बढ़ने तथा आत्मिक अनुभव पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए अपने को नियोजित कर रखा है, उसमें शौर्य तो होना ही चाहिए। वह उत्साह-भंग होने की किञ्चिन्मात्र चिन्ता नहीं करता, तब वह प्रगति करता है तथा जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए अपने को नियोजित किया है, उसे प्राप्त कर लेता है।

सद्गुरु-रूप में प्रव्यक्त भगवान् के प्रति विनम्र आत्म-समर्पण की भावावस्था को अपने जीवन में निरन्तर बनाये रखना चाहिए। यदि हम इस प्रकार अपना जीवन बितायें तथा परावैराग्य के साथ अपनी साधना करते रहें और जब भी श्रेय और प्रेय में से एक के चयन का अवसर हमारे सम्मुख आये, तो प्रेय को अस्वीकार कर श्रेय का ही वरण करें, तो हमारी साधना सफल होगी।

गुरु तो सदा ही सदय होते हैं; किन्तु गुरु-कृपा केवल भेंट करने की, प्रदान करने की ही वस्तु नहीं है, वरंच यह ग्रहण करने की भी वस्तु है। उसे शीघ्र प्राप्त कर हम अपने को अमर, अपने को दिव्य बना लेते हैं।

मनुष्य ईश्वर की अनुकृति है; अतः पवित्रता उसकी वास्तविक अन्तःसत्ता का स्वरूप ही है।

कोई भी धर्म नहीं चाहता कि मनुष्य अपने इहलौकिक जीवन से आबद्ध रहे। पूर्णता, स्वातन्त्र्य तथा अमरत्व की प्राप्ति सभी धर्मों का लक्ष्य है। सभी

धर्मों की शास्त्रोक्त प्रणालियों तथा विधि-विधानों में चाहे जो अन्तर हो, पर सार-रूप में उनकी प्रक्रियाएँ एक ही हैं। सच्चा धर्म मनुष्य की निम्न प्रकृति का, उसके पाशविक अंश का पूर्ण उन्मूलन तथा उसकी दिव्य प्रकृति का उत्तरोत्तर उद्घाटन चाहता है।

आप किसी भी दृष्टिकोण से धर्म तथा अध्यात्म के विषय के प्रति उपगमन करें, उसका परिशीलन करें, किसी भी दृष्टिकोण से इस पर दृष्टिपात करें, आप देखें कि मौलिक रूप से सभी धर्मों के महत्त्वपूर्ण संघटक एक ही हैं, समान हैं। सभी धर्म एक ही हैं तथा सभी धर्मगुरुओं (पैगम्बरों) ने नैतिक पूर्णता, भद्रता तथा मानव-जाति की एकता की चेतना से युक्त एक-सा जीवन व्यतीत किया था।

संन्यास का आधार वीरता है। आध्यात्मिक क्षेत्र का सच्चा सैनिक वह है जिसमें जीवन को उसके वास्तविक रूप में देखने का साहस है, जिसे यह पता है कि सभी जागतिक पदार्थ स्वप्नवत् क्षणिक हैं तथा यह संसार मिथ्या है, इस विश्वास का सम्बल प्राप्त कर विषय-जगत् के राग के सुदृढ़ बन्धनों से ऊपर उठ चुका है तथा ऐसे जीवन में पदार्पण कर चुका है जहाँ सबसे महान् संघर्ष, अपनी प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष करना होता है।

संन्यास का अर्थ है अपने अतीत के भ्रान्तिपूर्ण अहं की चेतना का उन्मूलन। इसका अर्थ है परम त्याग की प्रज्वलित अग्नि में अपनी सम्पूर्ण कामनाओं और आसक्तियों को विदग्ध करना, इसका अर्थ है शारीरिक चेतना के अन्तिम अवशेष को भी

भस्मीभूत कर डालना। यह एक भव्य नयी चेतना का प्रकटन है।

दिव्य जीवन का पथ, जो कि अन्तः आध्यात्मिक उद्घाटन की प्रगति की ओर ले जाता है, निःस्वार्थता तथा सेवा, भक्ति और उपासना, बाह्य विषयों से मन का प्रत्याहरण, धारणा तथा ध्यान का पथ है।

निःसन्देह आप दिव्य हैं। आप मात्र यह शरीर और बुद्धि नहीं हैं। आप अस्थि-मांस-निर्मित इस विनाशशील शरीर तथा इस परिच्छिन्न और विकारवान् मन तथा बुद्धि से पृथक् और भिन्न हैं। आप अविकारी तथा देश-काल से अपरिच्छिन्न अमर आत्मा हैं।

आप अपना जीवन इस प्रकार यापन करें और आपके सभी कर्म ऐसे हों कि आपका जीवन स्वयं सुख, शान्ति एवं आत्मज्ञान से प्रदीप्त प्रकाश की प्राप्ति के लिए एक अनुपम तथा प्रभावकारी साधना बन जाये। कुशलता तथा बुद्धिमत्तापूर्वक जीयें और इस लक्ष्य को प्राप्त करें एवं अपने जीवन को सही अर्थों में सार्थक बनायें।

जीवन साधना है। जीवन-यापन एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। समस्त कर्म, चाहे वे मानसिक हों, वाचिक हों अथवा कायिक हों, यज्ञ के निर्मायक हैं। वे (कर्म) स्थार्थमयी अवाप्ति के लिए नहीं होने चाहिए। इससे व्यक्ति की अहं-भावना स्थूल

होती है और उससे संसार तथा शोक के बन्धन और सुदृढ़ होते हैं।

समस्त जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियाँ आत्म-निवेदन अथवा जीव मात्र की सेवा तथा उनके लाभ और सुख के लिए होना चाहिए। परोपकार इस जीवन का मूल-मन्त्र है। यज्ञ इस जीवन के पीछे मूलभूत सिद्धान्त है।

शान्ति कोई दूर की वस्तु नहीं है। जब तक हम उसे बाहर खोजते रहते हैं, केवल भटकते ही रहते हैं। जब हम अन्तर्मुख हो कर स्वयं में ही शान्ति की खोज करने लगते हैं, तो धीरे-धीरे शान्ति का अनुभव करने लगते हैं और अपने लक्ष्यहृद्द्विआत्म-साक्षात्कार की ओर अग्रसर होने लगते हैं। शान्ति का सीधा सम्बन्ध हमारे हृदय से है। सहृदय हो कर शान्ति की खोज कीजिए।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का यह सेवक आज जो-कुछ भी है, वह गुरु महाराज की कृपा का ही फल है। आज जो इस सेवक को सत्कार और सम्मान मिलता है, वह वस्तुतः उन्हीं का सम्मान और सत्कार हैहृद्द्विमें ऐसा ही मानता हूँ। वह मेरे गुरुदेव ही नहीं, वरन् मेरी माता और मेरे पिता भी हैं। मैं उन्हीं का एक रूप हूँ। मैंने अनुभव किया है कि मेरे पीछे उन्हीं की प्रेरणा कार्य कर रही है।

{MXmZYX-dmUr

‘पुण्य’ कर्म वे हैं जो ईश्वर-प्राप्ति में सहायक हैं तथा ‘पाप’ वे कर्म हैं जो ईश्वर-प्राप्ति में बाधक हैं।

मन, वचन तथा कर्म में जब तक समानता नहीं होगी, आप अशान्त रहेंगे। तीनों का समत्व ही शान्तिपूर्ण जीवन की आधारशिला है।

साधक को सन्तों के आचरण से, उनके आदर्शों से समता करनी चाहिए। अपने से उत्तम से तुलना करने से व्यक्ति जीवन में आगे बढ़ता है। यदि साधक अपने से अशक्त-निर्बल से तुलना करेगा, तो वह पीछे रह जायेगा।

साधक को साधना के प्रति सदा सजग तथा जाग्रत रहना चाहिए। तनिक-सी भूल साधक की समस्त साधना, उसकी जीवन-भर की कमाई पल मात्र में समूल नष्ट कर सकती है।

अपने सुख के लिए किया गया कार्य सीमित सुख प्रदान करता है; किन्तु परोपकार नित नवीन आनन्द का सृजन करता है। आनन्द के नये द्वार खुल जाते हैं।

व्यक्ति में सभी क्षमताएँ विद्यमान हैं; उसमें ज्ञान है, उसके अन्दर शान्ति है, पवित्रता है। उसमें अपार शक्ति निहित है। वह निज स्वरूप पहचान कर, अपनी चेतना को उस पर स्थापित करके जो भी कार्य करेगा, वह पूर्ण तथा सफल होगा। आत्मा के अन्दर से जो शक्ति निकलती है, उसके सम्मुख संसार की ऐसी कोई

भी शक्ति, कोई भी सत्ता, ऐसी कोई भी भौतिक शक्ति नहीं है, जो उस आत्मिक शक्ति पर विजय प्राप्त कर सके, अधिकार प्राप्त कर सके।

तत्त्वज्ञान को ही अपरोक्षानुभूति, भगवद्-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-दर्शन कहते हैं। जो व्यक्ति उस ज्ञान से परिपूर्ण हो जाता है, उसकी समस्त चिन्ताएँ, बाधाएँ, पीड़ाएँ तथा कष्ट मिट जाते हैं और वह ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ कोई अभाव नहीं रहता, कष्ट नहीं रहता, कोई कामना तथा वासना नहीं रहती। वहाँ तो आनन्द ही आनन्द रहता है, पूर्ण शान्ति का साम्राज्य रहता है।

आनन्द, शान्ति और ज्ञान व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है। इसकी प्राप्ति के लिए हमने जन्म लिया है तथा ईश्वर ने हमें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति प्रदान की है।

परोपकारमय आचरण आत्मज्ञान-प्राप्ति की साधना है। इस साधना-पथ में जो-कुछ भी बाधा के रूप में आये, उसे शत्रु समझ कर उससे सावधान रहना चाहिए अथवा उसे परीक्षा मान कर उसमें सफल होने का उपाय खोजना चाहिए।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति, उसके विकास की कुंजी नारी अपने हाथ में रखती है, क्योंकि देश की प्रजा की प्रत्येक पीढ़ी में, उसकी बाल्यावस्था में माता ही सर्वप्रथम शिक्षिका होती है; इसीलिए परिवार को प्रथम पाठशाला कहा गया है। इस प्रारम्भिक शिक्षण

में सबसे प्रभावशाली तत्त्व माता का व्यक्तिगत आदर्श होता है।

यदि आपका भाव ईश्वर-पूजन का है और आपका काम उसके नाम से जुड़ा है, तो आपका प्रत्येक काम भजन बन जायेगा। स्थान घर हो, खेत हो, जंगल हो चाहे, वह प्रभु का मन्दिर बन जायेगा। आप जहाँ भी चलेंगे, वह ईश्वर की ही प्रदक्षिणा होगी।

मनुष्य-जन्म ग्रहण करने से ही मानव-जीवन नहीं बन जाता; जीवन तो निःस्वार्थ सेवा से बनता है, त्याग एवं वैराग्य से बनता है।

गृहस्थ-जीवन एक साधना-क्षेत्र है, यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। घर हमारी भगवद्-साधना का सर्वोत्तम मन्दिर है। जिस दिन यह घर हमारा आराधना-स्थल बन जायेगा, उस दिन हमारी सन्तति स्वयं ही उससे प्रेरणा ले लेगी और अपना जीवन सफल तथा उपयोगी बना लेगी।

आदर्श गृहस्थाश्रम में रहने से आदर्श सन्तान का जन्म होगा। ऐसी सन्तान हमारी संस्कृति, सभ्यता तथा धर्म की सुरक्षा करेगी। यह कार्य किसी सेना अथवा पुलिस द्वारा नहीं किया जा सकता। इसके लिए सही शिक्षा की आवश्यकता है।

जीवन को साधना मान कर, कटिबद्ध हो कर, पुरुषार्थ एवं परिश्रम के द्वारा; तितिक्षा, विचार और

विवेक के द्वारा; आत्म-परीक्षण तथा आत्म-निरीक्षण करके जीवन-संग्राम में संघर्ष के लिए जुट जाना चाहिए। जीवन-क्षेत्र सेवा, स्नेह, दया, दान तथा परोपकार का है।

व्यसन मानव के शत्रु हैं। व्यक्ति में अनेक प्रकार के दुर्व्यसन हैं। केवल बाह्य दुर्व्यसनों से ही नहीं, वरन् अन्तर्निहित दुर्व्यसनों से भी सावधान रहना चाहिए। केवल मद्यनिषेध ही पर्याप्त नहीं है, वरन् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से भी सतर्क रहना चाहिए।

भारत की एकता के लिए छुआ-छूत, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना को मिटाना नितान्त आवश्यक है। मन्दिर में जा कर जिस भगवान् पर हम जल चढ़ाते हैं, वह भगवान् अछूत में भी विद्यमान है और उसके मन्दिर में विद्यमान है। वेद भी इसी का उपदेश करते हैं कि चराचर में उसी को देखो। सबसे प्रेम करो, सब पर दया करो।

अँधेरे को अपशब्द कहने की अपेक्षा स्वयं अपने हाथ में दीपक उठा लें तो सर्वत्र प्रकाश होगा, अन्धकार विदूरित हो जायेगा।

आज जो संसार में संघर्ष तथा संकट है, वह साध्य-साधन के परस्पर विरोध के कारण है। हम शान्ति की इच्छा करते हैं; किन्तु अशान्ति के, संघर्ष के उपकरणों का प्रयोग करते हैं। ताप नष्ट करने के लिए शीतलता की आवश्यकता होती है, धूप की नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थिति तथा योग्यता एवं सामर्थ्य के अनुसार सेवा कर सकता है। मैंने हरिजनों का पाद-प्रक्षालन और पूजा की है। संन्यासी होने के कारण विवाह तो नहीं कर सकता; किन्तु यदि गृहस्थ होता तो घर में तरुण पुत्र होता तो उससे हरिजन बालिका से विवाह करने को अवश्य कहता। यदि कन्या होती तो हरिजन बालक से विवाह कराने का प्रयत्न भी अवश्य करता।

गान्धी जी कोई हृष्ट-पुष्ट पहलवान नहीं थे, फिर भी वे अत्यन्त शक्तिशाली थे। उन्होंने अपनी शक्ति प्रार्थना से प्राप्त की थी। उनकी इस क्षीण-काया में एक सशक्त तथा विलक्षण आत्म-बल था, जिसका सामना ब्रिटिश सरकार भी नहीं कर सकी। उन्होंने जो-कुछ किया, वह भगवद्-प्रेरणा से कियाहृद्धउसकी इच्छा से किया। उनकी शक्ति उनके 'रामनाम' में निहित थी।

शिक्षण के साथ-साथ मनुष्य के व्यक्तित्व की भिन्न-भिन्न भूमिकाओं का विकास भी होना आवश्यक है। उसके हृदय से साधना होनी चाहिए, हृदय का विकास होना चाहिए तथा उसमें परोपकार की वृत्ति बढ़नी चाहिए। शारीरिक, मानसिक तथा संकल्प-शक्ति का पूर्ण विकास होना चाहिए। तभी मनुष्य का पूर्ण विकास माना जा सकता है, अन्यथा उसे एकांगी विकास कहेंगे। मनुष्य का सर्वतोमुखी विकास नितान्त आवश्यक है।

सब शक्तियों की मूल-शक्ति ब्रह्मचर्य में है। शक्तियों का संरक्षण होना चाहिए। संयमी पुरुष के अन्दर पूर्ण ब्रह्मचर्य निहित रहता है। ब्रह्मचारी कुछ भी कर सकता है।

चित्त-शुद्धि तथा ब्रह्मचर्य के लिए बल और प्रेरणा विश्वात्म-शक्ति से प्राप्त करें। भक्त लोग उस शक्ति को भगवान् कहते हैं; वेदान्ती आत्मा की संज्ञा देते हैं। उसी शक्ति के साथ सम्बन्ध रखना चाहिए। वह शक्ति 'नाम' तथा 'मन्त्र' के रूप में विद्यमान है।

विधान तथा नियम प्रजा के हित के संरक्षण के लिए होता है। प्रजा की हित-साधना सत्य तथा न्याय से ही हो सकती है। यदि प्रजा की हित-साधना असत्य और अन्याय से होती है, तो ऐसे समाज की रचना में कहीं मूल रूप से त्रुटि समझनी चाहिए। विधि का कर्तव्य सत्य का समर्थन करना ही है।

हमारे जीवन के जितने भी क्षेत्र हैं, चाहे वह उद्योग हो, व्यापार तथा शिक्षा हो अथवा न्याय का होहलहहमारा प्रत्येक कर्म यज्ञ के रूप में होना चाहिए, ईश्वरार्पण होना चाहिए; तभी जीवन की सार्थकता है।

भारत की सुरक्षा का अर्थ केवल यहाँ के मनुष्य, वृक्ष, पर्वत, सरिता, भवन आदि की सुरक्षा नहीं है; वरन् सुरक्षा का अर्थ यहाँ के निवासियों की संस्कृति, सभ्यता और जीवन-पद्धति की सुरक्षा से है, भारतीय धर्म तथा प्रचलित नैतिक मूल्यों की सुरक्षा से है।

भारतीय संस्कृति सदाचार एवं चरित्र-निर्माण के द्वारा व्यक्ति को आदर्श मानव बना कर, परोपकार का सन्देश देती है। भारतीय जीवन-मूल्यों से व्यक्ति के अन्दर एक ऐसी आकांक्षा प्रस्फुटित होती है कि इस शरीर-त्याग से पूर्व वह संसार को कुछ दे कर जाना चाहता है। यहाँ संग्रह की भावना नहीं है। यही हमारा आदर्श है।

उत्तराखण्ड (हिमालय) मदिरा के लोभ से पर्यटकों को आकर्षित नहीं करता। यहाँ के निसर्ग का सौन्दर्य, यहाँ के सघन वन, हरित घाटियाँ, चरवाहों के लोकगीत तथा उससे भी अधिक यहाँ के देवस्थान, यहाँ के भोले-भाले निवासियों की पवित्रता ही पर्यटकों का हृदय खींच लेती है। वनों को सुरक्षित रखें, गरीब मजदूरों को पूरी मजदूरी दे कर ही इस प्राकृतिक सौन्दर्य को सुरक्षित रखा जा सकता है। शहर के लोग शहर की कृत्रिमता से, वहाँ के कोलाहल से ऊब कर शान्ति की खोज में यहाँ आते हैं। अतः पर्यटन उद्योग को पूर्ण व्यापारिक न बना कर विवेक-सम्मत दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

यदि राष्ट्र को सुदृढ़ बनाना है, तो लोगों के बीच खड़ी दीवारों को मिटाना होगा। अस्पृश्यता एक ऐसा रोग है जो क्षय-रोग से भी अधिक घातक है। यह ऐसी दीवार है जो भारतीय बन्धुओं को परस्पर पृथक् करती है। हृदय-परिवर्तन से इस भेद-भाव को मिटाना चाहिए।

व्यक्ति जो भी काम करे, उसे मानव-सेवा तथा राष्ट्र-सेवा मान कर करे। तदनन्तर इस सेवा को

आध्यात्मिक सेवा का रूप बना दे, जिससे अपने दृष्टिकोण में एक नवीन तथा अद्भुत परिवर्तन आ सके।

दुःखों की निवृत्ति तो आत्म-ज्ञान से ही सम्भव है। मानव का हृदय जब परिपूर्ण हो जाता है, वह आसकाम, कृतकृत्य हो जाता है। पशुता का निर्मूलन, मानवता का परिशोधन और दिव्यता का विकासहृदयही जीवन का परम लक्ष्य है।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए हमारे व्यक्तित्व में एकरूपता तथा एकीकरण की आवश्यकता है। विरोधों के मध्य पनपने तथा बढ़ने वाला जीवन संघर्ष है, उसमें शान्ति तथा आनन्द नहीं है। ऐसा जीवन जीने-योग्य नहीं होता।

मृत्यु के लिए कोई नियम नहीं है। किस दिन हमको जाना पड़ेगा, यह निश्चित नहीं है। यह यौवन क्षणभंगुर है। जीवन नाशवान् है। अतः शीघ्रातिशीघ्र सत्कर्मों में लग जाना चाहिए। आज से, अभी से प्रयत्न आरम्भ कर दीजिए।

तृष्णा के त्याग के लिए जीवन की सरलता तथा सादगी ही सफल साधना है। जीवन में यही दृष्टिकोण होना चाहिए कि संसार के भौतिक पदार्थों में से कम-से-कम पदार्थों का उपयोग करें। यही सुखी जीवन की कुंजी है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी देन यह है कि वह मानव को मानव बनाती है तथा पशु से पृथक् करती है। वह यह बतलाती है कि मानव-जीवन किस प्रकार का होना चाहिए तथा मानव को किन तत्त्वों के लिए प्रयास करना चाहिए।

जिस सिद्धान्त तथा मार्ग को हम अपनाते हैं; उसमें निष्ठा अवश्य रहनी चाहिए। जिस सन्त-महात्मा-संन्यासी को हम गुरु मान लें, तो फिर उसको आत्म-समर्पण कर देना चाहिए। उपासना के लिए एक साधना चुनने के पश्चात् फिर उसमें परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। गुरु-मन्त्र में पूर्ण श्रद्धा का भाव अपेक्षित है।

जब सज्जन लोग मिल कर कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं, तो उनके पीछे एक रहस्यात्मक अद्भुत शक्ति कार्य करने लगती है। अतः कार्य में निरन्तर संलग्न रहिए।

प्रार्थना में हृदय ध्वनित होना चाहिए, जिससे प्रार्थना आपके जीवन में सक्रिय हो जाये। प्रार्थना स्मृति से, रट कर नहीं निकलनी चाहिए। इस प्रकार की प्रार्थना तो 'तोता रटन' होगी, जो व्यर्थ है। उसे भगवान् के चरणों में निवेदित होना चाहिए, ताकि हमारा जीवन सृजनशील बन सके।

कर्ता तथा भोक्ता के अभिमान से रहित हो कर जो व्यक्ति कर्म और योग में प्रवृत्त होता है, उसके अन्दर दुर्बलता नहीं आती। जहाँ निष्कामता तथा

निःस्वार्थता है, वहाँ व्यक्ति की विजय पूर्ण निश्चित है।

जिस व्यक्ति में दिव्यता को जाग्रत करने की प्रक्रिया नहीं है, वह चलता-फिरता शव है। जीवन का मुख्य उद्देश्य हैद्वन्द्वदिव्यता का प्रस्फुटन। दिव्यता के अनावरण में जो निरन्तर लगा रहता है, उसके जीवन में दिव्यता ज्योतिष हो जाती है।

समय तीव्र गति से दौड़ रहा है। यदि हम अब भी सोते रहे, तो भारतीय धर्म-संस्कृति का लोप होना निश्चित है। भारतवर्ष का पतन हो जायेगा और यदि भारतवर्ष का पतन होगा, तो संसार ही समाप्त हो जायेगा। इस जगत् के लिए ऐसे कठिन समय में यदि कोई आशा है, तो वह भारतीयता है।

जैसा आपका विचार होगा, उसके अनुरूप ही आपका भविष्य होगा; इसलिए सदा सद्-विचारों के चिन्तन का ही अभ्यास करें। यही सफलता के रहस्य की कुंजी है। यदि विचार करते-करते मन अशुभ विचारों में भटक जाये, तो उसे बार-बार उनसे बलात् प्रत्यावर्तित कर सद्-विचारों में संलग्न करें। तभी आप कुछ कर सकेंगे।

कोई भी व्यक्ति अपना अहित नहीं चाहता; किन्तु किस में हित है और किस में अहित, इसे कोई विरला ही जानता है। विवेक द्वारा ही हित तथा अहित में अन्तर कर पाना सम्भव है। विवेक ज्ञान से आता है

और ज्ञान का उदय अज्ञान को नष्ट करने पर ही होता है।

लाख प्रयत्न करने पर भी अन्धकार विदूरित नहीं होता। चाहे जेब में करोड़ों रुपये रख कर घूमते रहें; किन्तु क्या अन्धकार भगाया जा सकता है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि अन्धकार के निवारण के लिए उसके विरोधी गुणह्वप्रकाश को लाना होगा। इसी प्रकार स्वार्थ को निःस्वार्थ-भाव से ही दूर किया जा सकता है। अज्ञान मिटाने के लिए ज्ञान प्राप्त करना होगा। अवगुणों का उन्मूलन गुणों के विकास से किया जाता है। जब तक मन सात्त्विक गुणों से पूर्ण नहीं होता, पवित्र नहीं होता, तब तक भगवद्-साक्षात्कार असम्भव ही है।

अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए जिससे दूसरों को प्रसन्नता मिल सके, दूसरों को लाभ हो सके तथा दूसरों की सहायता हो सके। यदि ऐसा सम्भव न हो, तो उससे कम-से-कम दूसरों के कष्टों को, दुःखों को तो किसी प्रकार कम किया ही जा सकता है। ऐसा ही जीवन वास्तव में जीवन है। यही हमारा धर्म है।

हमारी संस्कृति हमें सिखाती है कि हम स्वयं के लिए नहीं दूसरों के लिए जियें, स्वयं आधा पेट खा कर दूसरों की भूख मिटायें तथा स्वयं कष्ट सह कर दूसरों का कष्ट दूर करें। जीवन का यही रहस्य है। इसी को जीवन जीना कहते हैं और इसमें ही मानव-जीवन की सार्थकता है।

आप शरीर, मन और बुद्धि नहीं हैं। आप दिव्य हैं, महान् हैं। आप अस्थि और मज्जा रचित इस नाशवान् शरीर से तथा परिवर्तनशील मन एवं बुद्धि से पृथक् और भिन्न हैं। आप निर्विकल्प, निर्विकार, असीम, अदृश्य आत्मा हैं। आप व्यर्थ ही विषय-वासनाओं की कष्टप्रद अवस्थाओं में पड़े हैं, आप स्वप्न देख रहे हैं। यह सत्य नहीं है, यथार्थ नहीं है, जागिए और निज-स्वरूप को पहचानिए।

जीवन साधना तथा जीवन-क्रम एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। साधारणतया मन, वचन और कर्म से यज्ञ-कार्य सम्पन्न होता है। उन्हें स्वार्थ-सिद्धि मात्र के लिए प्रयुक्त नहीं करना चाहिए, अन्यथा जीवन तथा उसकी प्रवृत्तियों को प्राणिमात्र की सेवा, सुख तथा उपकार के निमित्त उत्सर्ग कर देना चाहिए।

जो-कुछ भी आप बनना चाहते हैं, बन सकते हैं। यही कर्म तथा कर्म-फल का नियम है। जो भी

कार्य आप करेंगे, उसका परिणाम अवश्यम्भावी है। अपने प्रारब्ध के लिए आप स्वयं उत्तरदायी हैं। अपने भाग्य के आप स्वयं निर्माता हैं। आज ही निश्चय कीजिए और कैवल्य-पद प्राप्त कीजिए।

गुरु को प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी यदि शिष्य को किसी वस्तु का अभाव खटकता है, किसी अनुभव तथा सुख की आवश्यकता होती है, तो इसका अर्थ है कि उसकी भक्ति, साधना तथा विश्वास में कहीं-न-कहीं कोई त्रुटि अवश्य है। गुरु को प्राप्त कर लेने के पश्चात् तो सभी इच्छाएँ तथा कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं। जिसने गुरु को अशेष आत्म-समर्पण नहीं किया है, जो पूर्ण आत्म-समर्पण नहीं कर सकता, वह ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता; क्योंकि ईश्वर तो अदृश्य है, परन्तु गुरु साक्षात् है।
